www.thearyasamaj.org

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका ❐ वर्ष-४ ❐ अंक-८ ❐ मुम्बई ❐ अगस्त - २०१३ ❐ मूल्य-रु.९/-

शहीद सरदार भगतसिंह

शहीद सुखदेव

स्वतंत्रता के प्रथम उद्घोषक, महर्षि दयानन्द सरस्वती

शहीदों की विरासत है : भारत की आज़ादी

शहीद शिवराज राजगुरु

शहीद चन्द्रशेखर अज़ाद

www.thearyasamaj.org

किनके हृदय में प्रभु की ज्योति का प्रकाश होता है

आचार्य भद्रसेन

१. योगी के हृदय में ही प्रभु के दर्शन होते हैं - जो सत्य भाव (सच्चे हृदय) से धर्म का अनुष्ठान कर, योग का अभ्यास करते हैं, उनके ही हृदय में परमात्मा प्रकाशित होता है । - ऋग्वेदभाष्य ७.३८.२

२. ब्रह्म को कौन जान सकता है - जो मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि व्रत, सदाचार, विद्या, योगाभ्यास, धर्म का अनुष्ठान, सत्संग और पुरुषार्थ से रहित हैं, वे जन अज्ञान-रूप अन्धकार से दबे हुए होने के कारण ब्रह्म को नहीं जान सकते और जो सर्वान्तर्यामी, सबका नियन्ता और सर्वत्र व्याप्त है, उसको जानने के लिए जिनका आत्मा पवित्र है वे ही योग्य होते हैं, अन्य नहीं । - यजुर्वेदभाष्य १७.३१

३. शरीर की पुष्टी तथा आत्मा और अन्त:करण की शुद्धि प्रभु प्राप्ति का साधन है - हे मनुष्यो ! तुम लोग धर्म का आचरण, वेद और योग के अभ्यास, तथा सत्संग आदि कर्मों से शरीर की पुष्टि और आत्मा तथा अन्त:करण की शुद्धि को सम्पादन कर सर्वत्र अभिव्याप्त परमात्मा को प्राप्त होके सदा सुखी होवो । - यजुर्वेदभाष्य ३२.११

४. परमात्मा किसे मिलते हैं - वह परमात्मा अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचार-शून्य, अजितेन्द्रिय, ईश्वर-भक्ति रहित जनों से बहुत दूर है । अर्थात् वे कोटि-कोटि वर्षों तक भी उसको नहीं प्राप्त होते। और वे तब तक जन्म मरण आदि दु:ख सागर में भटकते फिरते हैं जब तक उस (परमेश्वर) को प्राप्त नहीं होते । किन्तु सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक, विद्वान्, विचारशील पुरुषों के अत्यन्त निकट हैं । वे सबके आत्माओं में अन्तर्यामीरूप से व्यापक होकर पूर्ण हो रहे हैं वह (प्रभु) आत्मा का भी, आत्मा है उससे तिल मात्र भी स्थान खाली नहीं है, क्योंकि वह अखण्डैक रस होकर सब में व्यापक हो रहा है । उसी को जानने से सुख और मुक्ति मिलती है । अन्यथा नहीं । - आर्याभिविनय

५. हम उस प्रभु को क्यों नहीं जानते - हे जीवो ! जो परमात्मा इन सब भुवनों को रचनेवाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग नहीं जानते, क्योंकि तुम अविद्या से अत्यन्त आवृत्त होकर मिथ्यावाद और नास्तिकपन में फंसकर मिथ्या बकवाद करते फिरते हो। इससे तुमको दु:ख ही मिलेगा, सुख कदापि नहीं । तुम लोग केवल स्वार्थ साधक (बनकर) शरीर पोषण मात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो, और केवलविषय भोगों के लिए ही अवैदिक कर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो । और जिसने सब भुवन रचे हैं, उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी परमात्मा से उल्टे चलते हो इसीलिए उस प्रभु को तुम नहीं जान सकते । - आर्याभिविनय

६. भगवान् किसको अपने आनन्द से पूर्ण करते हैं - जो सब जगत् का पिता है, वही अपने उपासकों को ज्ञान और आनन्द आदि से परिपूर्ण कर देता है । परन्तु जो मनुष्य सच्ची प्रेम भक्ति से परमेश्वर की उपासना करेंगे, उन्हीं उपासकों को परम कृपामय अन्तर्यामी परमेश्वर मोक्ष सुख देके सदा के लिए आनन्द युक्त कर देगें । - ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपासनाप्रकरण

७. परमेश्वर की प्राप्ति किसे नहीं होती - यह उपासना-योग दुष्ट मनुष्य को कभी सिद्ध नहीं होता । क्योंकि जब तक मनुष्य दुष्ट कामों से अलग होकर अपने मन को शान्त और आत्मा को पुरुषार्थी नहीं बनाता, तथा भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता, तब तक कितना ही पढें अथवा सुनें, उसको परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती । - ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपासनाप्रकरण

८. परमात्मा के राज्य में कौन प्रवेश करते हैं - जो मनुष्य धर्माचरण से परमेश्वर और उसकी आज्ञा (पालन) में अत्यन्त प्रेम करके अरण्य अर्थात् शुद्ध हृदय रूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं, और जो लोग अधर्म के छोडने और धर्म के करने में दृढ तथा वेदादि सत्य विद्याओं के विद्वान् हैं ....वे मनुष्य ही प्राण द्वार से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश करके, और सब दोषों से छूट के परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं । - ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपासनाप्रकरण

९. परमात्म ज्योति का प्रकाश कहाँ पर होता है - कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदय देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर भी कहते हैं । उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एक रस होकर रम रहा है । वह आनन्द स्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशमय स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है । दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान या मार्ग नहीं है । ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपासना प्रकरण

१०. पुरुषार्थी पुरुष को परमेश्वर शीघ्र प्राप्त होता है - परमेश्वर अत्यन्त दयालु है, अत: जो जीव उसकी प्राप्ति के लिए तन, मन, धन से श्रद्धापूर्वक पुरुषार्थ करता है परमात्मा उसको शीघ्र ही प्राप्त होता है । - सत्यार्थप्रकाश, प्रथम संस्करण, समुल्लास ९

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

आर्य समाज सांताक्रुज, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ४ अंक ८ (अगस्त-२०१३)

- दयानंदाब्द : १९०, विक्रम सम्वत् : २०७०
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११४

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/-
- एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/-
- वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/-
- आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक /डीडी / मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पत्ता : आर्य समाज सांतक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४ फोन : २६६० २८००, २६०० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
सम्पादकीय	३
किनके हृदय में प्रभु की ज्योति का प्रकाश...	२
ईश्वर सिद्धि का वैज्ञानिक दृष्टिकोण	४-५
बसना और विहँसना	६-८
वेद मंत्र	८
वेदों का यथार्थ स्वरूप	९-१०
क्रोध	११
हम पवित्र हृदय के स्वामी हों	१२
विचार शक्ति का चमत्कार	१३
कर्म फल सिद्धान्त.....	१४-१५
महर्षि दयानन्द सरस्वती जीवन...	१५-१६

सम्पादकीय स्वराज्य और स्वतन्त्रता

दि. 15 अगस्त के दिन समूचे राष्ट्र ने हर्षोल्लास के साथ स्वतन्त्रता दिवस मनाया। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय योगदान दिया । वस्तुत: महर्षि दयानन्द के विचारों से ही प्रभावित होकर आर्य समाज के संपर्क में आकर कई क्रान्तिकारियों ने अपना सर्वस्व राष्ट्र के लिये आहुत कर दिया। अस्तु।

महर्षि ने संदेश दिया कि सुराज्य से बढ़कर स्वराज्य है। विदेशी चाहे कितना भी बढ़िया राजा हो वह अपना नहीं हो सकता उसके सामने महर्षि ने स्वराज्य को ही श्रेष्ठ साबित किया । देश स्वतन्त्र हुआ शहीदों- क्रान्तिकारियों-स्वतन्त्रता सेनानियों के सपने साकार होने का समय आया। परन्तु क्या उनके सपने साकार हो रहे हैं ! किसान - गरीब - असहाय सुखी हो रहे हैं ! नि:संदेह स्वतन्त्रता व स्वराज्य होने से देशवासियों को खुश व समृद्ध होने के अवसर प्राप्त हैं। किन्तु पश्चिम के भोगवाद व अन्धानुकरण के आगे आज स्वतन्त्रता भी संकुचित होती जा रही है । आर्थिक उदारीकरण की आड़ में बड़ी मछली छोटी मछली को निगलती दिखाई दे रही है।

कहावत चरितार्थ होती दिख रही है, "जिस देश का राजा व्यापारी, वह देश भिखारी।" अचानक आये इस आर्थिक उदारीकरण का लाभ येन-केन प्रकारेण चंद लोगों को राजनीतिक पहुँच की वजह से प्राप्त हुआ । नयी तकनीक व Infrastructure की आड़ में बड़े-बड़े उद्योगपतियों को व्यापारिक लाभ हो रहा है, आम आदमी का इससे दूर तक कोई वास्ता नहीं। आज अधिकांश अपनी पहुंच व पद की ताकत से अधिक से अधिक धन बटोरना चाह रहे हैं। नैतिकता ताक पर रख दी गयी है। इस भागदौड व लूट खसोट में देवतास्वरूप अण्णा हजारे जी अप्रासंगिक होते दिख रहे है।

इन सब बातों को आपके समक्ष रखने का उद्देश्य यही है कि आओ हम स्थिति का अवलोकन करें । राष्ट्र नि:संदेह तरक्की कर रहा है। किन्तु साथ ही इसके भागीदार यदि राष्ट्र के प्रति ईमानदारी व राष्ट्रियता को सामने रखकर अपने - अपने क्षेत्र के व्यवसाय/कार्यों को करेंगे तो नि:संदेह प्रत्येक देशवासी तक इसका लाभ पहुँचेगा । नैतिकता ईमानदारी राष्ट्रीयता का पाठ आज करेले के रस की तरह पिलाना होगा । वरना जैसे आज दिख रहा है कि अमेरिका में दूध एक डालर में मिलता है यहां डालर के अनुरूप दूध रु. 54-56 लीटर बिकता है। स्पष्ट है हम भारतवासी विदेशों की ओर देख रहे हैं । स्वयं संघर्ष करके प्राप्त की गयी स्वतन्त्रता को सिर्फ व्यक्ति परक लाभ की खातिर हम पुन: स्वतन्त्रता के महत्व को कम तो नहीं करते जा रहे इस बात के चिन्तन की आज आवश्यकता है।

- संगीत आर्य
९३२३५ ७३८९२

www.thearyasamaj.org

ईश्वर सिद्धि का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

पं. उम्मेद सिंह विशारद,
वैदिक प्रचारक उत्तराखंड

यह महत्वपूर्ण आध्यात्म लेख, महर्षि दयानन्द जी के सिद्धांतों व आर्य समाज के मान्यताओं के आधार पर आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण संक्षेप में लिखा है, जो महानुभाव ईश्वर को साकार मानते हैं और विभिन्न मनुष्य रूपों में ईश्वर की पूजा करते हैं, उनकी जानकारी के लिए यह लेख महत्वपूर्ण है, क्योंकि सृष्टि में साकार पदार्थों में चेतना शक्ति तो है, जिस कारण उनका विकास व विनाश होता है । उसमें परमात्मा तो है, किन्तु आत्मा नहीं है, और प्राणी मात्र में आत्मा का निवास कर्म करने व फल भोगने के लिए है । प्राणियों में केवल मनुष्य शरीर की आत्मा ही ईश्वरानुभूति कर सकती है । सूक्ष्म आध्यात्म दार्शनिक विषय है । पाठक ध्यान से स्वाध्याय करने की कृपा करें ।

अपाणिपादो जवनी ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्कर्णः
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमा हुरग्रयं पुरुषम् महान्तम।
(श्वेताश्वर उप.)

उपनिषद् का ऊपर जो उद्धरण दिया गया है, उसमें स्पष्ट कहा गया है कि ईश्वर के न हाथ है, न पांव है, बिना हाथों के व बिना पावों के गति करता है और उसके न आंख व कान हैं । बिना आँखो के देखता व बिना कानों के सुनता है । वेदों में साफ लिखा है ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है, अपितु शक्ति है । किन्तु उसमें पदार्थों की तरह अचेतन शक्ति नहीं है। अपितु ईश्वर चैतन शक्ति है । ईश्वर की सिद्धी में विशेष युक्ति है कि सृष्टि में सृजनात्मक चैतन शक्ति का होना और सृष्टि क्रम में नियमबद्धता का होना । सृष्टि में विशालता का होना और स्थायित्व का होना और यह सब लक्षण जड़ जगत, प्राणी जगत व वनस्पती जगत में सर्वत्र पाये जाते हैं। जिस शक्ति के कारण सृष्टि में ये लक्षण पाये जाते हैं। वही शक्ति ईश्वर है । यह भी विचारणीय है कि कर्मफल अपने आप कैसे मिल जाता है । कोई निराकार शक्ति अपरोक्ष रूप से अवश्य कार्य कर रही है। ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं या नहीं यह प्रश्न बार-बार उठते रहते हैं, किन्तु आंख से तो ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते हैं । अगर ध्यान को पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की तरह छठी ज्ञानेन्द्रिय मान लिया जाए तो ध्यान द्वारा ईश्वर की अनुभूति हो सकती है । क्योंकि ईश्वर का अस्तित्व है, अभिव्यक्ति नहीं अनुभूति हो सकती है । क्योंकि ईश्वर का अस्तित्व है, अभिव्यक्ति नहीं, परन्तु अनुभूति है । ईश्वर की यह अपूर्व सृष्टि ही ईश्वर की अनुभूति है, दर्शन है।

ऋग्वेद में कहा है कि अमीबा की सूक्ष्म दशा से लेकर महाबुद्धि सम्पन्न मनुष्य के शरीर तक में आत्मा रहता है, क्योंकि अमीबा की देह में वह जैसी गति, मति और चेष्टा करता है उसी में उसकी स्थिति भासने लगती है । गज के विशालकाय शरीर में और अन्य प्राणियों के शरीर में स्वकर्मानुसार जिस शरीर में जाता है वैसा ही बन जाता है । उसका यह रूप आत्मा का प्रत्यक्ष कराने के लिए है । मनुष्य की शान सबसे निराली है, क्योंकि केवल मनुष्य के देह में रहते हुए ही उस ईश्वर तत्त्व की अनुभूति हो सकती है ।

अधिकांश धार्मिक मतों में ईश्वर को मानव माना गया है :-

हम विभिन्न मतों की विवेचना में न जाकर हम वेद एवं वैज्ञानिक आधार पर ईश्वर को मानव रूप में स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि अगर ईश्वर मनुष्य जैसा होगा तो किसी स्थान विशेष में रहेगा और स्तुति उपासना करने से खुश और गाली देने से ना खुश हो जायेगा। इसलिए सम्पूर्ण आर्षशास्त्रों व वैज्ञानिक आधार पर वह ईश्वर अनादि है, अनन्त है, आनन्दमय है, सर्व व्यापि है । यदि उसका भौतिक शरीर होगा तो परिछिन्न होगा और उसमें जन्म और मृत्यु भी होगी, और अनादि अनन्त कैसे होगा इसलिए हमने अपने छोटे से दिमाग में ईश्वर को पुरुष विशेष मानकर उसकी पूजा करनी शुरू कर दी ।

ईश्वर व्यक्ति विशेष नहीं है और वह शक्ति विशेष सत्ता भी भौतिक न होकर चैतन्य स्वरूप है । वैसे तो जड़ में शक्ति है परमाणुओं का विश्लेषण करते-करते धनात्मक तथा ऋणात्मक विद्युत कण ही रह जाते हैं ।

जो शक्ति के पुंज तथा शक्ति के ही दुसरे रूप हैं। प्रकृति के परमाणुओं में निहित शक्ति जड़ का ही एक रूप है, वह शक्ति ईश्वर नहीं है, क्योंकि जड़ शक्ति प्रकृति कहलाती है और चैतन शक्ति परमेश्वर कहलाती है और ईश्वर चैतन शक्ति के कारण ही चैतन्य स्वरूप सृष्टि का कर्ता, धरता, संहर्ता कहलाता है ।

विज्ञान के अनुसार - सृष्टि की रचना '' नेब्युला '' अर्थात जिसको वेद में हिरण्यगर्भ कहा गया है, अर्थात जिसके गर्भ में अन्तराल में सुवर्ण जैसी चमक है । अन्तरिक्ष में इतने तारे है जैसे समुद्र के तटों पर रेत के कण है, जैसे हमारे सौरमन्डल में गति है वैसे उनमें भी गति व विकास की प्रक्रिया चल रही है, ये सब तारे नभोमन्डल में तीव्र गति से दौड रहे है और एक दुसरे से लाखों मील दूर है और करोडों सालों से गतिशील हैं, आश्चर्य है कोई एक दुसरे से टकराता नहीं है । ये सब अग्नि के पुंज है । पृथ्वी भी किसी समय अग्निमय थी, धीरे-धीरे अग्नि ठण्डी होती रही और जीवन का बने रहना सम्भव हुआ । वैशेषिक तथा न्याय दर्शन ने पाश्चात्य विचार के धनात्मक तथा ऋणात्मक इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन तथा प्रोटोन की तरह जो जड़ शक्ति के मूलभूत विद्युत मय अणु है । जब सृष्टि का निर्माण होता है तब दो गुण मिलकर द्वयणुक को उत्पन्न करते है, इसके बाद तीन द्वयणुक मिलकर एक त्रसरेणु उत्पन्न करते है जिसमें 6 अणुओं के मिलने से सूक्ष्मता के बाद स्थूलता आ जाती है ।

पाश्चात्य विचार के अनुसार सबसे पहले 'नेब्युला' इसके बाद धनात्मक तथा ऋणात्मक विद्युतमय तीन अणु इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन, प्रोटोन उनके मिलने से यह सृष्टि बनी । दोनों में भाषा अलग-अलग है विचार मूलत: एक ही है । भारतीय आस्तिक विचार यह है कि जड़ में यह गति विकास अपने आप नहीं हो सकता अगर अपने आप हो सके तो जड़ ही चेतन हो जाए, परन्तु जड कहीं चेतन नहीं दिखता क्योंकि बिना चेतन शक्ति

www.thearyasamaj.org

के जड़ में विकास व गति नहीं हो सकती है ।

क्या वनस्पति आदि में आत्मा है :-

वनस्पति वृक्ष आदि में चेतना है, चेतना इसलिए है कि वृद्धि और हास होता है, परन्तु क्या उसमें आत्मा भी है इसको समझने के लिए हमें आत्मा व चेतन शक्ति में भेद करना पडेगा ।

चेतन शक्ति विश्व के कण-कण में कर्तृत्व भाव से सर्वत्र व्याप्त रही है और उसी वज हसे वनस्पति तथा वृक्ष का बीज पृथ्वी में डालने के बाद गुरुत्वाकर्षण नियम से बंधा होने के कारण नीचे की बजाए ऊपर को अंकुरित होता है किन्तु यह सचेतन शक्ति का ही प्रभाव है इसलिए वृक्ष में चेतन शक्ति है किन्तु आत्मा नहीं है, वनस्पति में केवल परमात्मा है, आत्मा नहीं है । आत्मा वह है जो शरीर में आकर कर्मो को करता और उनका भोग करता हैं वनस्पति तथा वृक्ष में चेतना वह है जो वनस्पति के विकास व विनाश का कारण है किन्तु आत्मा की तरह कर्म नहीं करती कर्मफल नहीं भोगती ।

सृष्टि नियम :- देखने में आता है सृष्टि में सर्जन हो रहा है विकास व गति हो रही है । पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह अपनी परिधि में करोडों वर्ष में नियमित घूम रहे हैं । सूर्य , चन्द्र गहण किस दिन होगा, किस घडी होगा इस बात की गाणित से भविष्य वाणी की जा सकती है । इसी प्रकार वनस्पतियों व वृक्षों के उत्थान-पतन का निश्चित नियम है । आश्चर्य है जैसे जड जगत का नियम निश्चित है वैसे प्राणी जगत के भी अपने नियम है । सृष्टि के हर वस्तु का प्रयोजन है किसी उद्देश्य से उसका निर्माण हुआ है । प्रयोजन का होना सिद्ध करता है की उसके निर्माण के पीछे कोई चैतन शक्ति है वहीं ईश्वरीय शक्ति है ।

सृष्टि की विशालता :-

पृथ्वीं की परिधि 25 हजार मील है और 13 लाख गुणा बडी परिधि सूर्य की है, सूर्य पृथ्वी से 60 हजार गुणा बडा है सूर्य की किरण 1 लाख 86 हजार मील की रफ्तार से चलती है और 7 मिनट में पृथ्वी पर पहुचंती है । ब्रह्माण्ड में असंख्य तारे हैं और पृथ्वी से लाखों गुणा बडे हैं और अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहे हैं । करोडों वर्ष हो गये कोई आपस में टकाराता नहीं है । इन सबमें कोई अदृश्य चैतन शक्ति कार्य कर रही है ।

ईश्वर के दर्शन :-

ईश्वर को साकार मानने के कारण आज देश में भगवानों की बाढ आयी हुई है । गीता के सातवें अध्याय में ईश्वर निर्गुण रूप व सगुण रूप व अशरीरी रूप का वर्णन किया गया है । कहा है, हे अर्जुन, देख मुझ अशरीरी निगुर्ण का शरीर । मैं पानी के रस में सूर्य-चन्द्र के तेज में वेदों के आँकार में आकाश की ध्वनि में पुरुषों के पराकर्म में पृथ्वी के गन्ध में प्राणी मात्र के जीवन में तपस्वी के तप में बुद्धिमान की बुद्धि में बलवान के बल में हूँ और मैं सबमें हूँ सब मेरे सहारे टिके हैं, फिर भी मन्द बुद्धि लोग मुझे जानने का प्रयास नहीं करते है । इसलिए जो इस जड सृष्टि में प्राणभूत सत्व के दर्शन कर लेता है । वह ईश्वर को समझ लेता है।

पाठकों की जानकारी के लिए हमने ईश्वर सिद्धी का वैज्ञानिक दृष्टिकोण अति संक्षेप में लिखा है, कई ग्रन्थों के स्वाध्याय से थोडा सा लिखा है, यह विशाल है बुद्धिमान इतने में ही समझ सकते है ।

गढ निवास मोहकमपुर, देहरादून
उत्तराखण्ड
9411512019

धर्म-शिक्षकों की आवश्यकता

बीकानेर (राजस्थान) के प्रसिद्ध व प्रतिष्ठित राष्ट्र सहायक उच्च माध्यमिक विद्यालय (RSV) और उससे सम्बन्धित अन्य कुछ विद्यालयों में वैदिक धर्म, मानवीय जीवन-मूल्य, राष्ट्रभक्ति, नैतिक शिक्षा, संस्कृत, योग, आसन प्राणायाम, व्यायाम, सुरक्षा उपाय आदि को सिखाने-पढ़ाने हेतु ५ अध्यापक (स्त्री/पुरूष) की आवश्यकता है।

शैक्षणिक योग्यता- स्नातक/स्नातकोत्तर शास्त्री/आचार्य या समकक्ष। आर्यसमाज के गुरुकुल में पढ़े हुए, आर्यसमाज व महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों-सिद्धान्तों को जानने-श्रद्धा रखने वाले। बी.एड/शिक्षा शास्त्री/ एम.एड. को वरीयता।

साथ में विशेष योग्यता- आर्यवीर दल शिक्षक, योग-प्राकृतिक चिकित्सा की कोई उपाधि प्राप्त को वरीयता। पति-पत्नी दोनों शिक्षक हों तो भी वरीयता ।

वय- २५ से ४० तक। (यदि स्वास्थ्य अच्छा है तो अन्तिम आयु सीमा में छूट सम्भव)

वेतन- दस से बीस हजार (योग्यतानुसार) प्रतिमाह ।

चयन से पूर्व लगभग २ माह का प्रशिक्षण (१३ अक्टूबर से ७ दिसम्बर २०१३) प्राप्त करना अनिवार्य है। प्रशिक्षण हेतु अधिकतम दस व्यक्तियों का चयन होगा। प्रशिक्षण में सफल व्यक्तियों में से ५ का चयन बीकानेर में सेवा हेतु किया जाना है। शेष सफल व्यक्तियों के लिए भी अन्यत्र सेवा प्राप्ति को सम्भावना है। प्रशिक्षण देहरादून, अजमेर, रोजड़ व बीकानेर में दिया जायेगा। प्रशिक्षण व प्रशिक्षण काल में निवास भोजन व्यवस्था नि:शुल्क है। घर व शिबिर स्थल के बीच आवागमन मार्ग व्यय प्रशिक्षणार्थी को स्वयं वहन करना है।

आवेदन की अन्तिम तिथि- ३० सितम्बर २०१३

सम्पर्क- प्राचार्य राष्ट्र सहायक उच्च माध्यमिक विद्यालय, जयनारायण व्यास कॉलोनी, बीकानेर। ईमेल rsvjnv@gmail.com

दूरभाष-०९८२९२०७५४६, ०९८२९२१८८१८

इच्छुक व्यक्ति सादा कागज पर अपने समस्त सम्बन्धित विवरणों को लिखकर, अपने चित्र व प्रमाण पत्रों की प्रतिलिपि सहित ईमेल से भेज देवें।

www.thearyasamaj.org

वेदोपदेश :-

''बसना और विहँसना सहज उपासना स्त्रोत समझना''

– देवनारायण भारद्वाज

महीनों की प्रतीक्षा के बाद आश्रम का वार्षिकोत्सव एवं भण्डारा हुआ। अन्यान्य लोगों के साथ भक्त ध्यानचन्द्र भी इसमें सम्मिलित हुए। मध्यान्होपरान्त सत्संग हुआ, जिसमें ध्यानचन्द्र सबसे आगे की पंक्ति में बैठे। अभी गुरु जी का उपदेश प्रारम्भ ही हुआ था कि ध्यानचन्द की आंख लग गयी । गुरु जी ने टोक दिया – ध्यानचन्द्र ! सो रहे हो? ध्यानचन्द्र ने आंखें खोलते हुए उत्तर दिया – नहीं महाराज ! उपदेश फिर आगे बढा । देखते क्या हैं कि ध्यानचन्द्र फिर सो गये । गुरु जी ने फिर सतर्क करते हुए कहा – ध्यानचंद्र ! सो रहे हो ? उन्होनें फिर वही उत्तर दिया – नहीं महाराज ! गुरु शिष्य का यही संवाद एक बार फिर दोहराया गया । ध्यानचन्द्र के चौथी बार सोने पर गुरु जी ने अपने सम्बोधन में ऐसा रूपान्तर कर दिया, कि ध्यानचन्द्र को पुरे प्रवचन में नींद नहीं आई । ध्यानचन्द्र के सो जाने पर इस बार गुरु जी ने प्रश्न किया – ध्यानचन्द्र ! जी रहे हो? उन्होनें फिर अपना पुराना उत्तर दोहरा दिया – नहीं महाराज ! इसे सुन सारी सभा खिलखिलाकर हँस पडी, और अब जग हँसाई होते देखकर ध्यानचन्द्र की नींद उड गयी । यह हास्य प्रकरण ध्यानचन्द्र पर ही नहीं सारे संसार पर घटित होता है, जिसे सन्त कबीर ने देखा और कह पडे – सुखिया सब संसार, खावे और सोवे ।
दुखिया दास कबीर जागे और रोवे ।

माली अपनी बगिया में गया । आज उसको अपने बहाये गये पसीने की बूँदें–खिले हुए फूलों में दिखाई दीं, और उसके ओंठ भी मुस्कान से खिल उठे । अपने अभी अभी रोग से मुक्त हुए बच्चे के मुख पर पहली मुस्कान देखते ही, माता के अधर भी मुस्कान से खिल उठे । विद्यालय में उत्तम प्रस्तुति के फलस्वरूप गुरुजी ने बच्चे को एक कलम पुरस्कार में दी । परिवार के छोटे – बडे सभी सदस्यों के मुख मुस्कान से खिल उठे । माली ने पौधों को सुडौल बनाने के लिए उस की खूब छटाई–तुडाई की, माता ने बच्चे को सुयोग्य बनाने के लिए उसकी खूब खिंचाई की, और गुरुओं ने अपने शिष्यों को सफल बनाने के लिए उनकी पिटाई भी की, किन्तु आज उनकी प्रफुल्लता, प्रसन्नता एवं सफलता पर दोनों पक्षों के मुख पर खिली हुई मुस्कान एक बिन्दु पर एकाकार हो रही है, और ये सभी दृश्य उपासना की परिभाषा को परिलक्षित कर रहे हैं । इसी प्रकार लौकिक जगत की उपलब्धियाँ पारलौकिक व्योम में अल्पज्ञ आत्मा को सर्वज्ञ परमात्मा की अनुभूति का माध्यम बन जाती है । यह व्योम आपको आकाश की ऊँचाई पर ही नहीं, हृदय की गहराई में अवस्थित मिल जाता है । एकान्त में आसन लगाकर कीर्तन करना या मानसिक – वाचिक जाप करना भी उपासना की श्रेणी में आता है । पर , महर्षि पतंजलि की अनुभूति ''तज्जपस्त–तदर्थभावनम्'' हमारी सहज मार्गदर्शन करती है । नाम कीर्तन के साथ ईश्वर के गुणों से आत्मा को भावित व विभूषित करना ही उपासना है, जिसकी फलश्रुति प्रत्यक्ष जगत में दिखाई देती है ।

उस दिन गुरुजी ने एक वेदमन्त्र को आधार बनाकर अपना मनोहरी उपदेश दिया । मन्त्र दृष्टा ऋषि ब्रह्मा ने अपने एक पंक्ति के वेदमन्त्र में उपासना प्रकरण को खोलकर रख दिया है ।

ओं भवद्वसुरिदद्वसु संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ।।
(अथर्व 13.4(6)54)

अर्थात् हे परमात्मन् तू (भवद्वसुः) सांसारिक धन–साधन प्राप्त कराने वाला, (इदद्वसुः) श्रेष्ठ पुरुषों को ऐश्वर्यवान् करने वाला, (संयद्वसुः) पृथिवी आदि लोकों को नियम में रखने वाला, (आयद्वसुः) निवास का विस्तार करने वाला है । (इति) इसी प्रकार (वयम्) हम (त्वाउपास्महे) तेरी उपासना करते हैं । मन्त्र में चार बार आये 'वसुः' शब्द का हिन्दी सरलार्थ 'बसना' या 'बसाना' है । अपने पुराने जर्जर होते शब्दकोश में 'बसना' शब्द चार अर्थो को व्यक्त करता है । यथा – 1. निवास करना 2. जनपूर्ण होना 3. ठहरना 4. सुगन्ध से पूर्ण होना । मन्त्र में चार बार आये (वसुः) बसना एवं बसाने के साथ एक–एक उपसर्ग (भवद्) सांसारिक धन–साधन प्राप्त कराने वाले, (इदद्) श्रेष्ठ पुरुषों को ऐश्वर्यवान करने वाला, (संयद्) पृथिवी आदि लोकों को नियम में रखने वाला और (आयद) निवास का विस्तार करने वाला–प्रभु को बताया गया है । लेखक को इन चार सोपानों में भक्त के भगवान के समीप पहुंचते का अथवा उसकी उपासना का विज्ञान दिखाई देता है । कोई व्यक्ति किसी कलाकार के पास पहुँचना चाहता है । वह उस कलाकार के काम में हाथ बटाने लगता है तो कलाकार उसे अपना लेता है । इसी प्रकार लोक में उपरोक्त चार श्रेणी के कार्यो को करते हुए व्यक्ति परलोक में भी प्रभु का प्यार अर्जित कर लेता है । उपरोक्त सोपान यहाँ पर इन चार बिन्दुओं द्वारा प्रकट किए जाते हैं । 1.भव निवास 2. वैभव निवास 3. उद्भव निवास और 4. महानुभव निवास । प्रत्येक बिन्दु का संक्षेप में निर्वचन इस प्रकार करते हैं :-

1. भव निवास – हाथ–हृदय–मस्तिष्क में समन्वय बनाकर रहें । संसार में न केवल उपर, न केवल नीचे, प्रत्युत्त उपरनीचे की सभी दिशाओं का सन्तुलन बनाकर जियेंगे तो दुःख से बचकर सुख के मार्ग पर चलेंगे । जीवन जीने का एक दृष्टिकोण है – ''कबिरा खडा बजार में सबकी माँगे खैर । ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर ।'' यह दृष्टि किसी वीतराग सन्त की हो सकती है, जो किसी गुफा–कन्दरा या जंगल में रहता है और कभी–कभी बाजार में आ जाता है । संसार के ग्राम–नगर में बसने वाले व्यक्ति को नीर–क्षीर विवेक के साथ जीना पडेगा । इससे उत्तम उसकी दृष्टि है – ''साई इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय । मैं भी भुखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ।।'' यह दृष्टिकोण अच्छा तो है किन्तु सर्वोत्तम नहीं । इन दोनों से भी निःकृष्ट – एक दृष्टि यह भी है – ''अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम । दास मलूका कह गये सबके दाता राम ।।'' इन सबसे उपर प्रगतिशील वेद का

www.thearyasamaj.org

निर्देश है- ''कृतं मे दक्षिणे हसो जयो में सव्य आहितः।''(अर्थव 7.50.8) भावार्थ

मनुष्य अपने पूर्ण पुरुषार्थ एवं प्रभु भक्ति से पशु, भूमि, इन्द्रिय, निर्धनता एवं शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सुखी रहे । मनुष्य के पास कोई सम्पत्ति है या नहीं है, किन्तु प्रभु प्रदत्त शरीर से बढकर कोई सम्पदा नहीं हो सकती है।

मनुष्यों को अपनी बाल्यावस्था के बाद, या तब से ही अपनी आजीविका को कमाना पडता है । एक श्रमिक दिनभर श्रम करके अपनी दिहाड़ी सँभालते हुए घर जा रहा था । मार्ग में पडनें वाले मन्दिर में दर्शनार्थ रुक गया । शानदार सवारी से एक श्रेष्ठी उतरे और अपनी जूतियाँ बाहर छोडकर देवमूर्ति की ओर चले गये । वह श्रमिक उस दिन मूर्तियों से अधिक स्वर्णाभूषण जडित जूतियों को ही देखता रह गया । सोचने लगा - कहाँ यह सुन्दर चमकदार जूतियाँ और कहाँ बेवाइयों से फटे ये मेरे नंगे पैर? उसके इस पश्चाताप का सहज ही प्रायश्चित भी हो गया । उसने देखा कि हार्थो के बल घिसट - घिसट कर एक भिक्षुक मन्दिर की ओर बढ रहा है । इस दृश्य को देखकर देवमूर्ति तक पहुँचने से पूर्व ही मानो उसके हृदय में साक्षात् परमात्मा प्रकट हो गये । उसके जुडे हुए दोनों हाथ व सिर हृदय की ओर झुक गये । वह बोल पडा - प्रभु ! आपका धन्यवाद श्रेष्ठी को स्वर्णाभूषण जडित जूतियाँ शुभ हों - मुझे मेरे पैर ही मंगलकारी बने रहें ।

2. वैभव निवास - महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती का भरी सभा में शास्त्र-सम्मत उपदेश समाप्त हुआ, तभी रुई धुनने वाला धुना उनके पास आया और बोला - महाराज, मेरे जैसे अनपढ, गरीब का उद्धार कैसे होगा? स्वामी जी ने उसे बड़ी सरलता से समझा दिया । ग्राहक की जितनी रुई आये, उसकी पुरी रुई धुनकर रजाई भर दो । अपनी इसी ईमानदारी की मजदूरी से अपने परिवार का पालन करो । यही तुम्हारी पूजा और उद्धार का आधार होगी । राजा भोज कवि और कविता प्रेमी थे । जो कवि उन्हें अपनी नयी कवितायें सुनाता था, उसे वे एक लाख स्वर्ण मुद्रायें पुरस्कार में देते थे । ऐसे ही नवागत एक कवि ने राजधानी में रहने की इच्छा प्रकट कर दी । कर्मचारियों के द्वारा उसके लिए मकान की खोज की गयी । वहाँ एक से बढकर विद्वान निवास कर रहे थे । एक जुलाहे को अविद्वान समझकर उसको विद्वान के लिए मकान खाली करने का आदेश दिया गया । उसने राजा भोज के दरबार में पहुँचकर अपनी अभ्यर्थना प्रकट की । बोला - महाराज अपने काम के साथ - साथ मैं भी साधारण कविता कर लेता हूँ । प्रयत्न करूँ तो अच्छी कविता कर सकता हूँ । उसके श्लोक के अन्तिम तीन शब्दों ने न केवल उसका मकान उसे वापस करा दिया, प्रत्युत्त उसे स्वर्ण मुद्राओं का पुरस्कार भी प्रदान करा दिया । उसने राजा की स्तुति करते हुए कहा - ''कवयामि, वयामि, यामि'' प्रथम शब्द 'कवयामि' से 'क' से हटकर 'वयामि' रह गया और 'वयामि' से 'व' हटकर यामि रह गया । अर्थात मैं कविता करूँ या बुनाई करूँ अथवा घर छोडकर चला जाऊँ । अपना घर द्वार सजाने को तू औरों का घर बरबाद न कर । श्रेष्ठ शासक वही होता है जो अपनी पूर्ण प्रजा में विद्या एवं सद्गुणों के विकास की व्यवस्था करता है ।

मनुष्य अपने जन्म - जन्मांतर के संचित संस्कारों के वशीभूत होकर अपने विकास के राजपथ पर चलते है । शासक एवं आचार्यगण उनके कुसंस्कारों को दबाकर अच्छे संस्कारों को प्रखर बनाते हैं। कम्प्यूटर युग से दशाब्दियों पहले सिनेमा के विज्ञापन पट बनाने वाले अशिक्षित श्रमजीवी फिदा हुसैन जी उच्चकोटि के चित्रकार बन गये । उनके चित्र लाखों रुपये में बिकने लगे । इससे उनका विकास तो हुआ, किन्तु कुछ अश्लील चित्रों के कारण उन्हें अपने प्यारे देश से पलायन करना पडा । इक्का तांगा चलाकर जीविका कमाने वाले महाशय धर्मपाल मसालों के शहंशाह होकर अपार ऐश्वर्य के स्वामी बने और उन्होने अपने वैभव से शिक्षालय, चिकित्सालय, धर्मालय असहायजनों के उद्धार के कीर्तिमान को स्थापित कर दिया । अपने उत्पादन का विज्ञापन करवाने के लिए वे किसी प्रसिद्ध अभिनेता को नहीं बुलातें हैं, किन्तु इसका अभिनय वे स्वयं करके करोडों की राशि बचाकर दरिद्र नारायण की सेवा में लगा देते हैं । साधारण धन में जहाँ मुद्राओं की चमक होती है, किन्तु इस ऐश्वर्य में धन लक्ष्मी की चमक के साथ परमैश्वर्यशाली परमात्मा की दिव्य उपासना की दमक भी होती है । वेदमाता अपने पुत्रों का सदैव आगे बढने की प्रेरणा देती है । ''मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्'' (अथर्व 16.3.1) अर्थात् हे ईश्वर ! श्रम से ऐश्वर्य कमाकर मैं सामर्थ्यवान हो जाऊँ, उसका हित - परहित में निवेश करके मैं शीर्ष स्थान को प्राप्त करूँ ।

3. उद्भव निवास - 'उद्भव' से तात्पर्य नवजन्म, सृजन एवं निर्माण से है । यह कार्य कोई एक अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता है । शिशु के नवजन्म के लिए पति -पत्नी दो की फिर परिवार की आवश्यकता होती है। परिवारों के द्वारा ही समाज व राष्ट्रों के द्वारा ही विश्व का कल्याण व उत्थान होता है । वसु आठ होते हैं पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्र । यही बसने और बसाने में सहायक होते हैं । इनमें कुछ प्रकाश लोक हें और कुछ प्रकाश रहित लोक हैं । प्रभु इनमें अद्भुत समन्वय स्थापित करते हैं । सूर्य प्रकाश लोक है और चन्द्रमा अन्धकार पूर्ण है । सूर्य के तापजन्य प्रकाश को चन्द्रमा प्राप्त करता है और उसे शीतजन्य बना देता है। सूर्य जहाँ सृष्टि में सर्वप्रकारेण सृजन करता है, चन्द्रमा उसी सृजन में अपने सोम के द्वारा गुणवर्धन करता है । मानव मात्र को इस समन्वय के विज्ञान को अपनाने की आवश्यकता है । जंगल में लगी आग के मध्य एक लंगडा और दूसरा अंधा फंस गया । लंगडे ने आग को देख लिया और चिल्ला पडा - आग - आग । वह नहीं सकता था भाग । तभी अन्धा गया जाग - वह सकता था भाग । दोनों में मेल हो गया । अन्धे ने लगडे को पीठ पर बैठाया । लंगडे ने मार्ग दिखाया । इस प्रकार दोनों ने अपने को जलने से बचाया । यह समन्वय का सिद्धान्त सृष्टि के हर क्षेत्र में प्रतिपालनीय है । आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम राम को इस समन्वय के विज्ञान पर पूर्ण अधिकार था, जिसके कारण जंगल में रहते हुए, बिना अपने राज्य अयोध्या से सेना बुलाये, वनवासियों, गिरिबरसियों, आदिवासियों से सहायता लेकर उस अहंकारी रावण का विनाश करके यह लोकोक्ति चरितार्थ कर दी - ''एक लख पूत सवा लख नाती, ता रावण घर दिया न बाती '' दुर्योधन ने समन्वय किया किन्तु विवेकहीन अवैज्ञानिक, अपने पक्ष के सभी योद्धौं के मारे जाने

www.thearyasamaj.org

के बाद भी वह साधारण सेनानी शल्य पर विजय का भरोसा करके युद्ध लडता रहा और कौरवों के सर्वनाश का कारण बना। पाण्डवों ने योगिराज कृष्ण के समन्वय से ऐतिहासिक विजय का वरण किया।

4. महानुभव निवास - जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि 'बसना' शब्द का एक अर्थ सुगन्ध करना भी है। उपरोक्त तीन पग धरने के बाद व्यक्ति को मिलता है वह धरातल जहाँ उसका विस्तार होता दिखाई पडता है। फूल एक उद्यान में खिलता है उसकी सुगन्धि दूर-दूर तक फैल जाती है। मनुष्य भले एक ही स्थान पर सीमित रहे किन्तु उसके यश की सुगन्धि दूर-दूर तक फैलकर उसे विश्वव्यापी बना देती है। भारतवर्ष के अथवा सम्पूर्ण ऐशिया के लिए यह बडे स्वाभिमान का शताब्दी वर्ष है। पहला साहित्य का नोबल पुरस्कार रवीन्द्र नाथ ठाकुर को उनकी काव्यकृति 'गीतान्जलि' पर 1913 में प्राप्त हुआ था। पराधीनता की बेडियों में जकडी भारतमाता को अपने इस सपूत पर अपार गर्व का अनुभव हुआ था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने मानस पुत्र पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा को ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत का प्रोफेसर बनाकर इंग्लैण्ड भेजा था, जिन्होनें विश्व के मुख्य विकसित देशों मे भारत के गौरव का घोष कर दिया था। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने अंग्रेजी से युद्ध करके और स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो (अमेरिका) में जाकर वैदिक धर्म की धूम मचा दी थी। ऐसे अनेक भारत-नक्षत्रों ने विश्व -गगन में'विजय पताका फहराकर जहाँ एक और भारतमाता की मान - मर्यादा की रक्षा की, वहीं दूसरी ओर स्वयं को यशस्वी बनाकर अपना विश्वव्यापी विस्तार कर लिया।

सद्‌गुणी संसार जिसका सत्कार करता है, सर्वगुणी परमेश प्रभु भी उसे प्यार करता है। उपासना का यही परिष्कार मनुष्य का पुरस्कार है। कथन का विस्तार न करके समागान (साम 445) से ही आलेख का उपसंहार करते हैं:-

''अर्चन्त्यर्कं मरुत: स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्र:।।''

अर्थात् - जो सज्जन वेद मन्त्रों को श्रद्धा पूर्वक गा-गाकर ईश्वर की स्तुति प्रार्थना व उपासना करते हैं; दयालु प्रभु उनकी भावनाओं को अवश्य स्वीकार करते हैं। वे उनके दु:खों को दूरकर सुख प्रदान करते हैं। अत: सब मनुष्यों को उनके सान्निध्य को प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन मन्त्रोच्चारण पूर्वक सन्ध्या - हवन व सत्संग करते रहना चाहिए। इस प्रकार महात्मा भर्तृहरि जी के अनुभूत प्रयोग उसके जीवन में सार्थक हो उठते हैं।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा: कवीश्वरा:।
नास्ति तेषां यश: काये जरामरणजं भयम्।।

रसों में सिद्ध व पुण्यवान क्रान्तिदर्शी वे कवीश्वर धन्य हैं, जिनके यश रूपी शरीर में न बुढापे का भय है और न मृत्यु का। दीन हो या उच्चासीन प्रभु प्यारे से जिसका सम्बन्ध है - उसको हरदम आनन्द ही आनन्द है।

'वरेण्यम' अवन्तिका (प्रथम),

❀❀❀

तेरे अन्दर भी द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष हैं

ऋषि: गोतम:। **देवता** ईश्वर:। **छन्द:** आर्षी पङ्क्ति:।
अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्।
सजूर्देवेभिरवरै: परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व।।

-यजु0 7/5

ईश्वर कह रहा है- हे योगसाधक **(ते अन्त:)** तेरे अन्दर **(द्यावापृथिवी)** द्युलोक और पृथिवीलोक को **(दधामि)** रखता हूँ। **(अन्त: दधामि)** अन्दर रखता हूँ **(उरू अन्तरिक्षम्)** विशाल अन्तरिक्ष को। **(अवरै: परै: च देवेभि:)** अवर और पर देवों से **(सजू:)** समान प्रीतिवाला होकर (अन्तर्यामे) अन्तर्यज्ञ में **(मघवन्)** हे योगैश्वर्य के धनी! तू **(मादयस्व)** स्वयं को आनन्दित कर।

हे मानव! तू अन्तर्यज्ञ रचा। देख, बाहरी सृष्टि में सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष मिलकर यज्ञ रचा रहे हैं। सूर्य पृथिवी को प्रकाश और ताप देता है। वही अपनी किरणों से पार्थिव जल को भाप बना कर अन्तरिक्ष में ले जाता और बादल बनाता है। बादलों से वृष्टि करके शुष्क भूमि को सरस करता है, उस पर हरियाली पैदा करता है। अन्तरिक्ष चन्द्र द्वारा भूमि को शीतलता पहुँचाता है और सौम्य प्राण देकर जड़-चेतन को परिपुष्ट करता है। पृथिवी भी अपने अन्दर जो ऐश्वर्य भरा पड़ा है, जो पवन, नीर, अग्नि, सोना, चाँदी, हीरे, मूँगे आदि अमूल्य द्रव्यों की निधि रखी हुई है, उसे अपने पास न रख कर दूसरों के उपयोग के लिए दे देती है। सूर्य, पृथिवी और अन्तरिक्ष अलग-अलग भी परोपकाररूप यज्ञ कर रहे हैं और परस्पर सामञ्जस्य द्वारा भी जनकल्याण का यज्ञ रचा रहे हैं। हे साधक! तू यह मत समझ कि सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष केवल बाहर ही हैं, प्रत्युत तेरे शरीर के अन्दर भी ये विद्यमान हैं। तेरा आत्मा सूर्य है, तेरा शरीर या अन्नमयकोष पृथिवी है। तेरे प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोष अन्तरिक्ष हैं, जिनमें प्राण, मन और बुद्धि निवास करते हैं। इनमें तू परस्पर सामञ्जस्य उत्पन्न करके अन्तर्यज्ञ रचा। तेरा आत्म-सूर्य देहस्थ इन्द्रियों को तथा अन्तरिक्षस्थ प्राण, मन एवं बुद्धि को सुप्रकाशित करता रहे, अपने ताप से इनके दोषों को दग्ध करता रहे और ये सब मिलकर आत्मा को ज्ञान आदि से परिपुष्ट करते रहें। साथ ही अन्तर्यज्ञ रचाने के लिए तुझे अपने इन्द्रिय, प्राण, मन, एवं बुद्धि को सुप्रकाशित करता रहें, अपने ताप से इनके दोषों को दग्ध करता रहे और ये सब मिलकर आत्मा को ज्ञान आदि से परिपुष्ट करते रहें। साथ ही अन्तर्यज्ञ रचाने के लिए तुझे अपने इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि एवं आत्मा को अन्तर्मुख करना होगा। पूर्णत: बहिर्मुख रहते हुए ये अन्तर्यज्ञ के यजमान एवं होता, उद्‌गाता, अध्वर्यु तथा ब्रह्मा नहीं बन सकते। अन्तर्यज्ञ में तू अपने आत्मा को यजमान बना, मन को ब्रह्मा बना, चक्षु- श्रोत्र आदि को होता बना, वाणी को उद्‌गाता बना, प्राण को अध्वर्यु बना। तू शरीरस्थ अवर और पर दोनों देवों से सहयोग ले। इन्द्रियाँ और प्राण अवर देव हैं, आत्मा, मन, बुद्धि पर कोटि के देव हैं। इनके द्वारा योगसाधना करता हुआ तू परब्रह्म को प्राप्त करके ब्रह्मानन्द का अनुभव कर। यह ब्रम्हानन्द एवं सांसारिक आनन्दों से बढ़कर है। लाखों सांसारिक आनन्द मिलकर भी एक ब्रह्मानन्द की बराबरी नहीं कर सकते, ऐसा योगी ऋषियों ने अपने अनुभव से बताया है।

ज्योति यजुर्वेद साभार

www.thearyasamaj.org

वेदों का यथार्थ स्वरूप

-महात्मा हंसराज

भारत में घोर अन्धकार था। ऐसा अन्धकार था, जिसको संस्कृत में सूचीअभेद्य कहा जाता है अर्थात जो सुइयों से छेदने पर भी दूर न हो सके। ऐसे घोर अन्धकार में स्वामी जी का अविर्भाव हुआ तथा उन्होंने अनेक यत्न इस अन्धकार को देश से दूर करने के लिए किये।

जब आकाश पर चन्द्र न हो, मेघाच्छादित हो तो अन्धकार फैल जाता है, परन्तु सूर्य निकलते ही वह अन्धकार दूर हो जाता है तथा चारों ओर प्रकाश फैल जाता है। वेद आर्यावर्त्त का सूर्य थे। वे गुम थें वैदिक विद्या पर अविद्या की काली घटाएँ छाई हुई थी, अत: भारतवर्ष में अँधेरा छा रहा था।

यद्यपि वेद नाममात्र तो मौजूद थे, परन्तु वेदोक्त शिक्षा न थी। मैक्समूलर व ग्रिफ़िथ के अनुवाद मिलते थे तथा अंग्रेजी-पठित जन एकस्वर से कहते थे कि वे इन अनुवादों की सहायता से चार दिन में वेदों के विषयों में परिचित हो सकते हैं। सायणाचार्य का भाष्य भी वेदों पर मौजूद था, परन्तु ये सब अनुवाद तथा भाष्य वास्तविक वैदिक शिक्षा तथा वेदों के वास्तविक भाव को प्रकट करने में असमर्थ थे। स्वामी दयानन्द ने वेदों के सूर्य को यथार्थ रूप में भारत के आकाश पर प्रकाशित किया। अन्धकार छाया हुआ था। महान् आत्माएँ इस अन्धकार को देखकर दु:खी होती थी तथा इस अन्धकार को दूर करने का प्रयास करती थीं, परन्तु कोई यत्न सफल नहीं होता था। किसी ने उपनिषदों तक पहुँच की तथा उपनिषदों को पढ़कर निर्णय दे दिया कि यही वेद हैं। चार ब्राह्मण छात्र काशी में वेद पढ़ने भेजे गए। उन्होंने वापस आकर निर्णय दे दिया कि वेदों की शिक्षा व्यावहारिक नहीं।

यहाँ ऐसे भी लोग हैं जो यह कहते हैं कि कुरान पहले आसमान की जानकारी देता है, इञ्जील दूसरे लोक तक पहुँचाता है, वेद तीसरे लोक तक पहुँचाते हैं, वेदान्त चौथे लोक तक पहुँचाता है, गुरु नानक ने पाँचवें लोक का भेद प्रकट किया, कबीर छठे लोक तक पहुँचाते हैं और सातवें लोक तक पहुँचानेका राधास्वामी मत है।

वेद क्यों ?

स्वामी दयानन्द का सबसे बड़ा कार्य यह था कि उन्होंने वेदों की आवश्यकता को स्थापित किया।

बंगाल में बड़े-बड़े संस्कृत के पण्डित हैं, अंग्रेजी के बड़े-बड़े स्कॉलर हैं। उनकी लेखनी का लोहा अंग्रेजी भी मानते हैं। बंगाल देशभक्ति में सारे भारत का सिरताज बन रहा है, परन्तु बंगाल में वेद-विद्या का लोप है। वैदिक धर्म का वहाँ प्रचार नहीं और परिणाम यह है कि वहाँ कुलीन ब्राह्मणों में कर विवाहों कुरीति है, बालविवाह की प्रथा है। यह तथ्य खेदजनक है कि वह बंगाल ही है जहाँ एक वर्ष से कम आयु की विधवाएँ पाई जाती हैं। बंगालियों की एक बड़ी संख्या स्वयं होटलों में खाती है तथा उन्हे खानपान का कोई विचार नही; कई प्रकार के कुकर्म हैं। परंतु, ज्यूं ही कोई इंगलैंड से शिक्षा प्राप्त करके वापस आता है, उसके लिए घोर प्रायश्चित आवश्यक समझा जाता है और वही लोग जो स्वयं होटलों में जाकर खाते हैं, केवल खानपान के आधार पर अपने स्वदेश लौटे भाई को बहिष्कृत करने पर उद्यत हो जाते हैं तथा उनको अपने साथ मिलाने में सौ अड़चनें (युक्तयाँ देकर) डालते हैं। कारण यह है कि दृढ़ शिला पर खड़ा करनेवाला वैदिक धर्म वहाँ प्रचलित नहीं। अन्धविश्वास बहुत फैला है। ज्ञान तो है परन्तु उस पर आचरण नहीं किया जाता। महाराष्ट्र को लें, वहाँ वेदों की शिक्षा है, पण्डित वेद पढ़ते हैं। कई पण्डितों को तो एक-एक दो-दो वेद कण्ठस्थ होंगे, परन्तु आचरण की क्या स्थिति है ? व्यवहार में वहाँ मूर्ति प्रचलित है, गणपति की पूजा होती है, जब कि वेदों में मूर्तिपूजा का लेशमात्र भी नहीं मिलता। श्राद्ध-कर्म जारी है, जबकि वेद इसका समर्थन नहीं करते। बालविवाह होता है, जबकि ब्रह्मचर्य को अनिवार्य बताते हैं। ऋषियों के साथ स्वर मिलाकर वेदों को ईश्वरीय ज्ञान का स्थान नहीं दिया जाता, अपितु उन्हें ऐतिहासिक स्थान (इतिहास की दृष्टि से पुराने ग्रन्थ दिया जाता है तथा सिद्ध करने का यत्न किया जाता है कि वेदों का रचनाकाल दस सहस्त्र वर्ष ही है; वे उत्तरी ध्रु व के निकटस्थ क्षेत्र में लिखे गए थे। वेदों के होते हुए व्यावहारिक जीवन की यह स्थिति है। ऋषि-मुनि वेदों को ईश्वरकृत मानते चले आए हैं- वे ऋषि-मुनि, जिन्होंने आत्मिक अभ्यास करते-करते जीवन खपा दिये।

पिल्पलाद ऋषि के पास छ: ऋषि गए कि उन्हें ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी जाय तथा आत्मा एव आत्मिक शक्तियों का भेद बताया जाय। पिल्पलाद ऋषि ने इन छ: ऋषियों को, जो श्रोत्रिय अर्थात् श्रुति से परिचित थे, वर्षभर साधन करने के पश्चात् ब्रह्मविद्या का अधिकारी बनकर आने को कहा। यह उस युग की स्थिति थी। आजकल पाँच मिनट में सकल संशय-निवारण और सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करने की कामना की जाती है। उपनिषदों की कथाओं से पता चलता है कि ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने के लिए लोग कैसी-कैसी कठिनाईयां झेला करते थे तथा किन साधनों से कार्य कर लेते थे। नचिकेता की कथा आपने कई बार सुनी है। यम ऋषि नचिकेता से कहते हैं कि सकल विश्व के सुख-भोग तथा ऐश्वर्य ले लो, परन्तु इसका उत्तर मत माँगो कि मृत्यु का विचार रखते हुए इन भोगों से कौन सुख प्राप्त कर सकता है? ऐसे -ऐसे निर्लोभी ब्रह्मदर्शी ही वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। परन्तु महाराष्ट्र के पण्डित ऋषि-मुनियों की सम्मति को स्वीकार करना नहीं चाहते।

बृहदारण्यक उपनिषद् में एक कथा है कि देवताओं ने दैत्यों के साथ युद्ध करने में विभिन्न इन्द्रियों को सेनापति बनाया। नाक सुगन्धि के विषय में फँस गई। चक्षु रूप के काबू में आ गए। कानों को राग के विषय ने ग्रसित कर लिया। देवताओं ने प्राणों का सहारा लिया कि जिनका अपना

www.thearyasamaj.org

कोई स्वार्थ, अपना कोई विषय नहीं तथा प्रत्येक समय प्रत्येक इन्द्रिय तथा अंगों की रक्षा एवं सहायता में लगे हैं। विषय में फँस जानेवाले इन्द्रिय को सेनापति बनाकर युद्ध में देवता हार जाते थे, परन्तु प्राण को सेनापति बनाकर वे असुरों पर विजयी हो गये।

ये ऋषि-मुनि प्राणरूप होकर वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने की पुष्टि करते हैं। ऋषि दयानन्द का वही स्थान था। उन्होंने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान का भण्डार बतलाया। वे प्राण थे कि जिनको कोई विषय वश में न कर सकता था। ओ३म् से प्रीति तथा परोपकार ने उन्हें दृढ़ चट्टान बना दिया था। हमने अपनी आँखों से देखा है कि दयानन्द को छलिया (मक्कार) कहनेवालों का अपना छल संसार में प्रकट हो गया। एक ने स्वामी दयानन्द पर आक्रमण किया, परन्तु वह एक चट्टान पर मिट्टी का एक ढ़ेला सिद्ध हुआ तथा स्वयं चूर-चूर हो गया। एक समय था कि वह आँखें मींच-मींचकर बड़ी श्रद्धा से प्रार्थना करता था। उसके मुख से यही ध्वनि सुनाई दे रही होती थी कि वह महान् प्रभु की गोद में बैठा हुआ आनन्द अमृत पान कर रहा है तथा उस परमपिता के दरबार में उसकी विशेष पहुँच है और उसका स्थान ऊँचा है, परन्तु समय आया कि वही व्यक्ति अब ईश्वर की सत्ता में ही विश्वास नहीं रखता। उसका छल अब प्रकट हो गया। वह अपनी बातों में झूठा निकला। वह अपने-आपको जिस परमात्मा के चरणों में बैठकर दर्शन करने का दावेदार था, उसकी सत्ता से ही अब इनकारी बन बैठा है। उसके मन के विचार स्वत: व्यक्त हो गये। मेडिकल कॉलेज के एक विद्यार्थी ने मुझसे प्रश्न किया कि पं. गुरुदत्त जी विद्यार्थी सचमुच वेदों को ईश्वरकृत मानते है ? मेरा पण्डित जी से निजी सम्बन्ध था। मैंने कहा, 'हाँ ! वह हृदय से वेदों को ईश्वरीय ज्ञान का भण्डार मानते हैं।' परन्तु उस बंगाली के हृदय में पं० गुरुदत्त जी के सम्बन्ध में क्यों सन्देह हुआ था ?

इसका कारण यह था कि वह स्वयं वेदों की गौरव-गरिमा को नहीं मानता था, इसलिए किसी अन्य के हृदय में वेदों के लिए उच्च श्रद्धा पर उसको सन्देह होता था। उसके अपने मन में शंका थी तथा उस शंका का सन्देह औरों पर करता था। यही अवस्था उन लोगों की थी, जो स्वामी दयानन्द को छलिया बताते थे। छल उनके अपने मन में था, परन्तु वे उसका प्रतिबिम्ब औरों में देखते थे। दक्षिणी पण्डित सूत्रग्रन्थ पढ़े हैं, ब्राह्मणग्रन्थ जानते हैं, पवित्रता का इतना विचार है कि शूद्र सामने आ जाये तो मुख फेर लेते हैं, छाया पड़ जाये तो स्नान किये बिना नहीं रहते, परन्तु क्या वे वेदों के मन्तव्य-अमन्तव्य से अपरिचित नहीं हैं ? स्वामी जी का बड़ा उपकार इस सृष्टि पर है कि उन्होंने वेदों के वास्तविक अर्थो का प्रकाश किया, वे भी कोई नये नहीं। उन्होंने डंके की चोट से घोषणा कर दी कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनि-पर्यन्त जो ऋषि-मुनियों के सिद्धान्त रहे हैं, वही उनके सिद्धान्त हैं। वह सत्य-सनातन धर्म को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। स्वामी जी ने बतलाया कि वेदों में मूर्तिपूजा कतई नहीं। वेदों में मृतक-श्राद्ध-कर्म नहीं। वेद बाल-अवस्था में विवाह की आज्ञा नहीं देते। जिन बातों की वेद आज्ञा नहीं देते थे, वेदों के होते हुए वे कर्म किये जाते थे। हरिद्वार पर गुरु नानक ने एक पण्डित को पितरों के नाम से जल अञ्जलि देते देखा तो वे दोनों हाथों से पानी उछालने लगे। लोगों ने पूछा, ''क्या कर रहे हो ?' उत्तर दिया, ''तलवण्डी में खेत बोया हुआ है, उसको जल देता हूँ।'' लोग हँसते हैं कि वहाँ यह जल कैसे पहुँच सकता है? आपने पूछा तो फिर पण्डे का जल पितरलोक में इसके पितरों को कैसे पहुँच सकता है ? गुरु नानकदेव का तो यह विचार था, और आज उन्हीं के अनुयायी धर्मशालाओं में गुरु नानकदेव जी की मृत्यु के दिन उनका श्राद्धकर्म करते हैं।

ऋषि दयानन्द का पथ कष्टप्रद तो है, परन्तु उन्होंने लोगों का वेदों के यथार्थ अर्थो की ओर ध्यान दिलाया। हिन्दू धर्म में कैसे-कैसे परस्पर-विरोधी विचार पाए जाते हैं ! द्वैत और अद्वैत का विवाद, शैवों तथा वैष्णवों के सम्प्रदायों के मतभेद, पुराणों के विभिन्न विचार लोगों को विचित्र चक्र में डाले हुए थे। एक पुराणं में लिखा है कि जो द्वारिका की छाप शरीर पर न लगवाए, वह नरक में पड़ेगा। दूसरा पुराण इस विचार के सर्वथा विपरीत है। इसमें छाप लगवानेवाले को नरक का अधिकारी बताया गया है। हिन्दुओं की यह दुर्गति हो रही थी कि वे प्रत्येक विचार को मान लेते थे। उसके निकले मुसलमान भी सच्चे थे तथा ईसाई भी। परस्पर-विरोधी पुराण भी सच कहते हैं तथा स्वामी दयानन्द भी भला पुरुष था।

स्वामी जी ने सिंहनाद से हिन्दुओं की आँखें खोल दीं कि वे इन भूलभुलैयों के जीवन से निकलें। वेदोक्त चलन ग्रहण करें, जो एक सैद्धान्तिक जीवन का मार्गदर्शन करता है। आर्य भाइयो ! ऋषि ने हमें प्रकाश दिया। क्या हम इस प्रकाश को ग्रहण करने को तैयार है ? इससे आपके कष्ट तो अवश्य होगा, परन्तु जीवन का ध्येय यही है। स्वामी जी का मन्तव्य पूरा करने के लिए मन को मारना तथा आत्मा के दुर्भावों का दमन करना होगा, क्योंकि इसके बिना हम ऋषि का मिशन पूरा नहीं कर सकते। जब तक अपने-आपको न मार लें, हम सफलता से कुछ नहीं कर सकते। प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने नगर, कस्बा, ग्राम तथा कुल में एक बढ़िया उदाहरण बने और इस प्रकाश को सामने रखे जो सहस्त्रों वर्षो के पश्चात् स्वामी दयानन्द ने पुन: प्रसारित किया है।

पुरुष ही नहीं, अपितु स्त्रियाँ भी वेदोक्त धर्म की उन्नति में व प्रसार में विशेष सहायता दे सकती हैं। इतिहास साक्षी है कि ईसाई धर्म की उन्नति में स्त्रियों ने बहुत भाग लिया है। फ्रांस के शासक की पुत्री इंगलैड के राजा से इस शर्त पर व्याही गई कि वह अपनी रानी के लिए एक गिरजा का निर्माण करावे जहाँ रानी पूजा किया करे। कैन्टरबरी का गिरजा बनाया गया और परिणाम यह है कि इंगलैंड में ब्याही गई थी, ईसाई मत के उस भाग में फैलने का कारण बनी।

आओ सज्जनवृन्द ! हम वैदिक धर्म के प्रकार-प्रसार के लिए तन-मन-धन से यत्न करें और परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह हमारे प्रयत्नों में हमारे सहायक हों, हमें सद्मार्ग दिखाएँ तथा पाप-कर्म दूर करके हमें सेवा के योग्य बनाएँ।

''प्रेरक प्रवचन'' से साभार

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

क्रोध

डॉ. सम्पत सेठी

दूसरों की गलती की सजा स्वयं को देना क्रोध है। वास्तुशास्त्र जीवन जीने के बेहतरीन तरीके को बनाना में या तैयार करने में सहयोगी रहा है। शास्त्र यह कहता है, ''घर में, ऑफिस में आग्नेय कोण दूषित होने से मानव के शरीर में क्रोध रूपी आग को हवा देने में सहायक हो जाता है।'' आज हर जगह चर्चा रही है कि इनको क्रोध ज्यादा आता है, उनको क्रोध ज्यादा आता है, सबको क्रोध ज्यादा आता है। क्या क्रोध पहलें नहीं आता था। अगर हमलोग व्यवहार में देखेंगे आज से २५ वर्ष पहले एवं आज क्रोध का अनुपात बढता जा रहा है। अकस्मात बढने के पीछे कोई कारण जरुर होगा। बिना कारण और कार्य के परिणाम नहीं निकलते। कारणों की सूची बनाई जाए, एक अच्छा खासा शास्त्र बनकर तैयार हो जाएगा। स्वयं गुस्सा नहीं आता, गुस्से के लिए वातावरण, भाषा,कार्यशैली, पढाई, व्यवहार, खाना इत्यादि असंख्यात कारण है। सर्वप्रथम हम खाने के बारे में विचार करें, विद्वानों ने लिखा है,'' **जैसा खाए अन्न वैसा होए मन। जैसा पीयो पानी, वैसी होगी वाणी।**'' सद्गृहस्थ के घर में खाना बनाने का स्थान अवश्य होता है। आप उस रसोई, पाकशाला एवं अंग्रेजी में किचन कह सकते है। किचन की सफाई और शुद्धता का प्रभाव भोजन पर पडता है और भोजन करने वाले के मस्तिष्क पर पडता है। भोजन तीन तरह के बताये गये हैं - सात्विक, राजसिक, तामसिक। ज्यादातर परिवारों में रसोईघर की सफाई नहीं होती। गंदगी के कारण जीव - जंतु पैदा हो जाते हैं। स्प्रे करके सबको मौत की नींद सुला दिया जाता है। जिस गृहिणी के हाथ से अनेक जीवों की हत्या हो रही है उनके हाथ का बना हुआ खाना एवं उस स्थान पर बना हुआ खाना सात्विक कैसे हो सकता है। देखने में वह खाना सात्विक है, मगर वह तामसिक से भी गया गुजरा है। यह भी क्रोध आने का एक बडा कारण है। क्रोधी व्यक्ति का जब मुंह खुलता है तो दिमाग काम करना बंद कर देता है। वह अपने पुत्र को भी ऐसी गालियां दे जाता है, जिसका सीधा संबंध गाली देने वाले से होता है। उदाहरण के तौर पर गधे का बच्चा तुम्हें कुछ समझ नहीं आता। यहां गधा कौन हुआ और बच्चा कौन हुआ?

आज कल पाश्चात्य शिक्षा का चलन बढता जा रहा है। पाश्चात्य शिक्षा में सिर्फ शिक्षा ही देती है लोक-व्यवहार नहीं सिखाती। आज के २५ वर्ष पहले पीढी अपने घर के बडों का सम्मान करती थी, आदेश का पालन करती थी, तर्क एवं कुतर्क नहीं करती थी। पाश्चात्य शिक्षा में सम्मान और अपमान का मतलब नहीं समझ में आता। घर के बडों ने कोई बात कह दी, उनका जबाब मुंह पर देना, बात नहीं मानना, अपने आपको बुद्धिमान समझना भी घर में अशांति और गुस्से का कारण बन जाता है। गुस्सा रूपी पेट्रोल बच्चे, बुढे, जवान सबमें भरा हुआ है, अपशब्द रूपी माचिस की जरुरत है, बाहर आने में देर नहीं लगती। अभिमान एवं मान होना स्वाभाविक है। अभिमान को ठेस लगने से भी गुस्सा बहुत जल्दी आ जाता है। आपको जो चीज पसंद नहीं, वही चीज बार-बार आपेक सेवक, आपकी पत्नी, आपके पुत्र एवं आपके आस-पास के दुहराते है, तो गुस्सा आना स्वाभाविक है। आपके स्वभाव के विपरीत वातावरण भी आपके मस्तिष्क में हलचल पैदा करके गुस्सा बढाने में सहयोगी हो जाता है। बार-बार एक काम को करने का आदेश देने के बाद भी जब वह काम नहीं होता, उस काम के नहीं होने से व्यापार एवं गृहस्थी में जब नुकसान का बोझ बढ जाता है, तो आज के अर्त युग में गुस्सा आ ही जाता है। आज के पढे-लिखे बच्चे, कम्प्यूटर युग के बच्चे अपने सोच को सही मानते हैं। बार-बार अपने अभिभावकों एवं सीनियरों का अपमान करते हैं, तब भी गुस्सा आता है। कई बार ऐसा भी देखा गया है, मां-बाप बच्चों पर गुस्सा करते हैं,वह गुस्सा वास्तविक नहीं होता, बच्चों को सही मार्ग पर लाने के लिए दिखावटी गुस्सा होता है। कई बार ऐसा भी देखा है भूखंड वास्तु दोष से दूषित होता है। वहां नकारात्मक ऊर्जाए अपना अधिपतत्य रखती है। नकारात्मक सोच अपना आलसी, गुस्सा कराने में सहायक बन जाता है। क्रोध स्वयं नहीं आता अपने साथ पुरी फौज को लेकर आता है। फौज का मतलब क्रोध में आदमी को विवेक नहीं रहता, उसे क्या बोलना है, क्या करना है, कैसे करना है और क्यों करना है? ज्ञानियों का ज्ञान, ध्यानियों का ध्यान, तपस्वियों का तप क्षण मात्र में खत्म हो जाता है। भाषा का संयम खो देता है एवं अनर्थ हो जाता है। नारायण कृष्ण ने गीत लिखा है -

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

'क्रोध से बुद्धि भ्रमित हो जाती है, बुद्धि भ्रांत होने पर स्मृति लुप्त होजाती है, स्मृतिलोप हो जाने पर (उचित - अनुचित) बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धिनाश के फलस्वरुप व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता है।''

गुस्सें को वश करने के लिए मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा एवं योग के द्वारा दिखाई, सिखाई गयी भक्ति गुस्से पर कंट्रोल करने का एक रिमोट है। योग से क्रोध को जीता जा सकता है।

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

हम पवित्र हृदय के स्वामी हों

डॉ. अशोक आर्य, मण्डी डबवाली

अग्नि तेज का प्रतिक है, अग्नि ऐश्वर्य का प्रतीक है, अग्नि जीवन्तता का प्रतीक है। अग्नि में ही जीवन है, अग्नि ही सब सुसों का आधार है। अग्नि की सहायता से हम उदय होते सूर्य की भांति खिल जाते है, प्रसन्नचित रहते हैं। जीवन को धन ऐश्वर्य व प्रेम व्यवहार लाने के लिए अग्नि ऐसा करे। इस तथ्य को ऋग्वेद के ६.५२.५ मन्त्र में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है :-

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सुर्यमुच्चरनतम।
तथा करद वसुपतिर्वसुना देवां औहानोऽवसागमिष्ठः।। ऋग.६.५२.५।।

शब्दार्थ :-

(विश्वदानीम) सदा (सुमनसः) सुन्द व पवित्र हृदय वाले प्रसन्नचि (स्याम) होवें (न) निश्चय से (उच्चरंतम) उदय होते हुए (सूर्यम) सूर्य को (पश्येम) देखें (वसूनाम) धनों का (वसुपतिः) धनपति, अग्नि (देवां) देवों को (ओहानः) यहाँ लाता हुआ (अवसा) संरक्षण के साथ (आगमिष्ठाः) प्रेमपूर्वक आने वाला (तथा) वैसा (करत) करें।

भावार्थ :-

हम सदा प्रसन्नचित रहते हुए उदय होते सूर्य को देखें। जो धनादि का महास्वामी है, जो देवों को लाने वाला है तथा जो प्रेमपूर्वक आने वाला है, यह अग्नि हमारे लिए ऐसा करे।

यह मन्त्र मानव कल्याण के लिए मानव हित के लिए परमपिता परमात्मा से दो प्रार्थनाएं करने के लिए प्रेरित करता है :-

१. हम प्रसन्नचित हों

२. हम दीर्घायु हों

मन्त्र कहता हें की हम उदारचित, प्रसन्नचित, पवित्र हृदयवाले तथा सुन्दर मन वाले हों। मन की सर्वोत्तम स्थिति हार्दिक प्रसन्नता को पाना ही माना गया है। यह मन्त्र इस प्रसन्नता को प्राप्त करने के लिए हमें प्रेरित करता है। मन की प्रसन्नता से ही मानव की सर्व इन्द्रियों में स्फूर्ति, शक्ति व ऊर्जा आती है।

मन प्रसन्न है तो वह किसी की भी सहायता के लिए प्रेरित करता है। मन प्रसन्न है तो हम अत्यंत उत्साहित हो कर इसे असाध्य कार्य को भी संपन्न करने के लिए जुट सकते है, जो हम साधारण अवस्था में करने का सोच भी नहीं सकते। हम दुरुह कार्यों को सम्पन्न करने के लिए भी अपना हाथ बढा देते हैं। यह मन के प्रसन्नचित होने का ही परिणाम है। असाध्य कार्य को करने की भी शक्ति हमारें में आ जाती हैं। अत्यंत स्फूर्ति हमारे में आती है। यह स्फूर्ति ही हमारे में नयी ऊर्जा को पैदा करती है। इस ऊर्जा को पा कर हम स्वयं को धन्य मानते हुये साहस से भरपूर मन से असाध्य कार्य भी संपन्न कर देते है, जिन्हें हम ने कभी अपने जीवन में कर पाने की क्षमता भी अपने अंदर अनुभव नहीं की थी।

मन को कभी भी अप्रसन्नता की स्थिति में नहीं आने देना चाहिए। मन की अप्रसन्नता से मानव में निराशा की अवस्था आ जाती है। वह हताश हो जाता है। यह निराश व हताशा ही पराजय की सूचक होती है। यही कारण है कि निराश व हताश व्यक्ति जिस कार्य को भी अपने हाथ में लेता है, उसे संपन्न नहीं कर पाता। जब बार बार असफल हो जाता है तो अनेक बार ऐसी अवस्था आती है कि वह स्वयं अपने प्राणांत तक भी करने को तत्पर हो जाता है। अतः हमें ऐसे कार्य करने चाहिए, ऐसे प्रयास करने चाहिए, ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिए व ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे मन की प्रसन्नता में निरंतर अभिवृद्धि होती रहे।

मन की पवित्रता के लिए कुछ उपाय हमारे ऋषियोंने बतायें हैं, जो इस प्रकार हैं :-

१. हृदय शुद्ध हो :-

हम अपने हृदय को सदा शुद्ध रखें। शुद्ध हृदय ही मन को प्रसन्नता की ओर ला सकता है। जब हम किसी प्रकार का छल, कपट दुराचार आदि व्यवहार नहीं करेंगे तो हमें किसी सेभी कोई भय नहीं होगा। कटु सत्य को भी किसी के सामने रखनें में भय नहीं अनुभव करेंगे तो निश्चय हमारी प्रसन्नता में वृद्धि होगी।

२. पवित्र विचारों से भरपूर मन : -

जब हम छल कपट से दूर रहते हैं तो हमारा मन पवित्र हो जाता है। पवित्र मन में सदा पवित्र विचार ही आते है। अपवित्रता के लिए तो इस में स्थान नहीं होता। पवित्रता हमें किसी से भय को भी नहीं आने देती। बस यह ही प्रसन्नता का रहस्य है। अतः चित्त की प्रसन्नता के लिए पवित्र विचारों से युक्त होना भी आवश्यक है।

३. सद्भावना से भरपूर मन : -

हमारे मन में सद्भावना भी भरपूर होनी चाहिए। जब हम किसी के कष्ट में उसकी सहायता करते है, सहयोग करते हैं अथवा विचारों से सद्भाव प्रकट करते हैं तो उसके कष्टों में कुछ कमीं आती है। जिसके कष्ट हमारे दो शब्दों से दूर हो जायेंगे तो वह निश्चित ही हमें शुभ आशीष देगा। वह हमारे गुणों की चर्चा भी अनेक लोगों के पास करेगा। लोग हमें सत्कार देने लगेंगे। इससे भी हमारी चित्त की प्रसन्नता अपार हो जाती है। अतः चित्त की प्रसन्नता के लिए सद्भावना भी आवश्यक तत्त्व है।

इस प्रकार जब हम अपने मन में पवित्र विचारों को स्थान देंगे, सद्भावना पैदा करेंगे तथा हृदय को शुद्ध रखेंगे तो हम विश्वदानिम अर्थात् प्रत्येक अवस्था में प्रसन्नचित्त रहने वाले बन जायेंगे। हमारे प्रायः सब धर्म ग्रन्थ का ही तो गुणगान करते है। गीता के अध्याय २ श्लोक संख्या ६४ व ६५ में भी इस तथ्य पर ही चर्चा करते हुए प्रश्न किया है कि -

मनुष्य प्रसन्नचित कब रहता है?

इस प्रश्न का गीता ने उत्तर दिया है कि मनुष्य प्रसन्नचित तब रहता है जब उसका मन राग, द्वेष रहित हो कर इन्द्रिय संयम कर लेता है।

फिर प्रश्न किया गया है कि प्रसन्नचित होने के लाभ क्या हैं?

इस का भी उत्तर गीता ने दिया है कि प्रसन्नचित होने से सब दुःखों का विनाश हो कर बुद्धि स्थिर हो जाती है। अतः जो व्यक्ति प्रसन्नचित है उसके सारे दुःख व क्लेश दूर हो जाते है। जब किसी प्रकार का कष्ट ही नहीं तो बुद्धि स्वयमेव ही स्थिरता को प्राप्त कराती है।

जब मन प्रसन्नचित हो गया तो मन्त्र की दूसरी बात पर भी विचार करना सरल हो जाता है। मन्त्र में जो दूसरी प्रार्थना प्रभु से की गयी है, वह है दीर्घायु। इस प्रार्थना के अंतर्गत परमपिता से हम मांग रहे हैं कि हे प्रभु! हम दीर्घायु हों, हमारी इन्द्रियाँ हृष्ट - पुष्ट हों ताकि हम आजीवन सूर्यादय की अवस्था को देख सकें। सूर्योदय की अवस्था उत्तम अवस्था का प्रतीक है। उगता सूर्य अंतःकरण को उमंगों से भर देता है। सांसारिक सुख की प्राप्ति की अभिलाषा उगता सूर्य ही पैदा करता है। यदि हम स्वस्थ हैं तो सब प्रकार के सुखों के हम स्वामी है। जीव को सुखमय बनाने के लिए प्रसन्न होना तथा स्वस्थ होना आवश्यक है। अतः हम ऐसा पुरुषार्थ करें कि हमें उत्तम स्वास्थ्य व प्रसन्नचित जीवन मिले।

१०४ - शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी
जिला गाजियाबाद उ. प्र.
चलभाष ०९३५४८४५४२६

www.thearyasamaj.org

विचार शक्ति का चमत्कार-२

(मनचाही वस्तु पाने का विज्ञान)

- राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त,
मंत्री आर्य समाज, वाशी.

हम अक्सर यह कहते पाए हैं यह संसार मायावी है, असत्य है सब मायाजाल है इससे वैराग्य होना चाहिए। कितना गलत होते हैं, हम जब कि इस संसार में परमात्मा ने हमें इस सुख को भोगने पिछले कर्मो का फल भोगने तथा अच्छे कर्म करने के लिए इस संसार में भेजा है जिससे हम सुख, शान्ति एवं आनन्द प्राप्त कर सकें।

दूसरी तरफ यदि कोई व्यक्ति सोच रहा होता है या मनन कर रहा होता हैं या सपने देख रहा होता है तो हम कहते हैं कि केवल सोचने से क्या होता है? कुछ कर्म करो। तब हम भूल जाते है कि यही सोच या विचार कर्म में परिवर्तित हो जाते हैं निर्भर करता है हमारे विचारों में कितनी तीव्रता है।

तीसरी ओर कोई व्यक्ति दिन रात ईश्वर की पूजा-पाठ में मग्न रहता है तब हम कहते है कि केवल ईश्वर की पूजा-पाठ से क्या होनेवाला है, कुछ कर्म करो, धन उपार्जन करो। हमें ध्यान रखना चाहिए कि ईश्वर की पूजा भी अपने आप में सशक्त कर्म है जिससे हमें शक्ति प्राप्त होती है और यह हम पर निर्भर करता है कि उस शक्ति का प्रयोग हम किस कार्य में कर रहे हैं। धन उपार्जन में परोपकार में या अन्य स्वार्थ सिद्धि के कार्य में। धन के स्रोत स्वयं खुलने लगते हैं। केवल धन उपार्जन ही कर्म की श्रेणी में नहीं आता बल्कि विचारों की क्षणिक उत्पत्ती ही कर्म की श्रेणी में आ जाती है।

मैं यहीं पर कुछ अनुभव प्रयोग प्रस्तुत कर रहा हूं। जिनमें पूरा जीवन समा जाएगा।

१) फल की अपेक्षा कारण बलवान होता है- बैठी बिठाई आमदनी होना अच्छी बात है जैसे ब्याज की, किरार्य की, उससे भी अच्छी बात एवं धन अर्जित करना हैं। जैसे नौकरी करना व्यवसाय करना इत्यादि लेकिन किन कारणों से यह दोनों हो रहे हैं वह सबसे ज्यादा जरूरी है। याद रहे यदि कारण को पकड़कर या समझकर चलोंगे तो फल में निरंतरता बनी रहेगी। कार्य (फल) से कर्ता (करम) ज्यादा शक्तिशाली होता है ओर कर्ता से कारण (मूल कारण या उपादान कारण) जिसकी वजह से कर्ता ने कार्य किया, शक्तिशाली होता है। इसके बारे में विस्तार से अगले अंक में चर्चा करेंगे।

२) फल प्राप्त करना, उसमें निरंतरता बनाए रखना तथा उसमें बढ़ोतरी करना- यह तीनों बातें अपने आप में जरूरी है तथा कठिन हैं। अक्सर फल या भौतिक सुख सम्पन्नता प्राप्त करने के बाद हम नकारात्मक विचारधारा से उसे खो बैठते हैं या फिर फल प्राप्त करने के पश्चात हम उससे संतुष्ट हो जाते हैं और उसमें बढ़ोती करना भूल जाते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। इसीलिए मैं कहता हूं कि यदि हम मूल कारण को पकड़कर चलेंगे तो प्राप्त हुए फल को खोने का भय कभी नहीं उत्पन्न होगा।

३) हमारे साथ जो कुछ भी घटित होता है सुख कारक उसके कारण हम एवं होते हैं।- अक्सर हम अपने दु:खो के दोष को अपने माता-पिता, भाई-बहन, बेटा-बेटी, मित्रों या सम्बन्धीयों पर डाल देते हैं जो कि ठीक नहीं हैं। यदि हमसे कोई बुरा व्यवहार कर रहा है। तो उसका कारण स्वयं को समझना चाहिए तभी हम सुख के मूल कारण तक पहुंच पाएंगे। इसीलिए मूलभूत बात यह है कि ''अच्छा सोचो, एवं अपने बारे में भी और दूसरों के बारे में भी। तो सब अच्छा ही अच्छा होगा।''

४) सभी के बारे में अच्छी भावनाएँ रखो- यह लिखते ही मुझे यह बात याद आ जाती है कि मैं हर व्यक्ति को समझूंगा ताकि मुझे सामूहिक प्रार्थना का बल प्राप्त हो सके। हर व्यक्ति की परिस्थिति अलग होती है, उसकी उस परिस्थिति को समझकर उससे सहानुभूति रखना अपने आप में बड़ी बात है। सामनेवाले की खुशी में हमें खुशी महसूस होनी चाहिए जैसे किसी की बेटी का विवाह हो रहा हो तो हमें उतनी ही खुशी होनी चाहिए जैसे कि स्वयं की बेटी का विवाह होने पर होती या कोई चोटिल होकर अस्पताल में भर्ती हो गया तो हमें उतना ही अफसोस होना चाहिए जैसे कि हम स्वयं अस्पताल में भर्ती हो गए हो। यदि ऐसा हो पाता है तो समझिये कि हमारा जीवन सही दिशा में अग्रसर हो रहा है।

५) समस्या और उसका समाधान- यदि इन दो बातों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे तो जीवन में सफलता प्राप्त करना काफी आसान हो पाएगा। समस्याएं जीवन में आती रहेंगी लेकिन उनका हल ढूँढ़ना समझदारी होती है। यदि यह किया होता तो समस्या आती ही नहीं यह बाद में सोचो बल्कि उसके समाधान पर पहले विचार करो।

सुन्दरगढ़ जिले के भूकनपड़ा ग्राम में धर्मरक्षा अभियान के अन्तर्गत दो सौ परिवारों ने वैदिक धर्म ग्रहण किया।

ओडिशा एवं झारखण्ड की सीमा पर कुछ ग्रामों में 90 प्रतिशत भोले-भाले, सरल स्वभाव के वनवासी निवास करते हैं। इनकी सरलता का लाभ उठाकर कुछ राष्ट्रविरोधी तत्त्व इन्हें लोभ-लालच देकर राष्ट्रीय धारा से अलग करके विदेशी मतों में ढ़ाल देते हैं। उन्हीं में से 200 परिवारों से 14 जुलाई को श्रद्धापूर्वक यज्ञ में आहुति देकर गुरुकुल आश्रम आमसेना के आचार्य एवं कुशल वैद्य स्वामी व्रतानन्द जी सरस्वती उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा के वरिष्ठ उपप्रधान श्री पं. विशिकेशन जी शास्त्री के सान्निध्य में पुन: वैदिक धर्म को ग्रहण किया।

यह महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी के मार्गदर्शन में उन्हीं के आदेशानुसार यह धर्म रक्षा अभियान का कार्यक्रम उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से चलाया जा रहा है, यह आयोजन श्री वा. परमानन्द जी, श्री वासुदेव जी होता के प्रयत्न से किया गया। इस कार्यक्रम में हजारों श्रद्धालु लोगों ने भी पहुँचकर यज्ञ में आहूति दी और प्रसाद ग्रहण किया।

-आचार्य रणजीतार्य विवित्सु'
मुख्याध्यापक
गुरुकुल आश्रम आमसेना
उड़ीसा.

www.thearyasamaj.org

कर्म फल सिद्धान्त-सैद्धान्तिक द्रष्टिकोण

वेदाचार्य डॉ. रघुवीर वेदालंकार

अक्तूबर 2012 की 'नूतन निष्काम पत्रिका' में श्री. अभिमन्युकुमार खुल्लर का एक लेख 'कर्म का सिद्धान्त एक अलग द्रष्टिकोण' प्रकाशित हुआ है। लेख रोचक है तथा प्रश्न उपस्थित करता है कि आज निकृष्ट कार्यों में संलग्न है। चोरी, जारी, डकैती, हत्या, अपहरण, गवन, रिश्वत, घोटाले आदि आजका युगधर्म बन गये हैं, पुनरूपि जनसंख्या वृद्धि क्यों हो रही है? अत: खुल्लरजी लिखते हैं कि जनसंख्या में यह बढ़ोतरी तुल्य पाप-पुण्य आत्माओं को स्वीकार करना सरलता से गले न उतरने वाली बात है। वह बात सुल्लर जी ने इसलिए लिखी है कि स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि पाप पुण्य जब बराबर होते हैं तब मनुष्य जन्म प्राप्त होता है। शंका है कि आज पाप बढ़ने पर भी जनसंख्या वृद्धि क्यों हो रही है? दूसरे, जनसंख्या वृद्धि में सर्वाधिक योगदान गरीब समुदाय का है। खुल्लर जी पूछते है कि क्या जन समुदाय का यह वर्ग मनुष्य जीवन की महत्ता को समझ पाने की योग्यता अर्जित कर पायेगा? जब कि कहा गया है कि मानव जन्म अनमोल है, मिलेन बारम्बार।

निम्न वर्ग की जनसंख्या मानव जन्म की महत्ता को समझें या न समझें यह तो अलग बात है। निम्न वा क्या उच्च तथा मध्यम वर्ग भी इसकी महत्ता को तब तक नहीं समझा जब तक कि उसे ज्ञान न हो, क्या आप समझते है कि अभिनेता सलमान खां जो करोडों रुपया एक ही फिल्म के लेते हैं, मानव जन्म की महत्ता को समझते हैं? यदि ऐसा होता तो अपनी कार से फुटपाथ पर सोने वाले मजदूरों को कीडे मकोडे की तरह कुचल कर भाग न जाते। यदी उनमें थोडा भी विवेक होता तो उन्हें वहीं उन मजदूरों की जिन्दगी भी अपने समान ही मूल्यवान मानकर यथोचित आचरण करना चाहिए था। उच्च वर्ग या अति सम्पन्न लोगों में से अधिकांश अपने या अन्य मानवों के जीवन की किमत या लक्ष्य समझते ही नहीं है। वे जानते हैं तो केवल धन एवं एशोआराम। हाँ एक निर्धन तथा मजदूर भी जीवन की महत्ता को समझते हैं किन्तु विवश्वता वश कुछ कर नहीं सकता। पुनरपि थोडा बहुत सत्संग, व्रत, दान, तीर्थाटन आदि वह उसी उद्देश्य से करता है। केवल मध्यम वर्ग जीवन की महत्ता को भी समझता है तथा साधन होने से कुछ उपाय भी इसके लिए करता है। आजकल की चकाचौंध में यह भी छुटता जा रहा है।

अब रही बात यह कि पाप बढ़ने पर भी आजकल जनसंख्या क्यों बढ़ रही है! प्रश्न विवेचनीय है। इसमें पहले तो यह देसिए की 122 करोड़ की भारत की जनता में चोर, जार, डाकू, कुहेरे आदि दुष्कर्मा कितने हैं? मुश्किल से कुल जन संख्या का 5% दुष्ट का आतंक होता है। एक दुष्ट भी सेकडों सज्जनौ को तंग करता है। यदी हाल अब है। दुष्ट व्यक्ति बढ़ रहे हैं, किन्तु वे संख्या में थोडे होने परभी उनका आतंक सर्व व्यापी है। इसलिए ऐसा न समझा लिया जाए कि आज कल सत्कर्म करते रहे ही नहीं या सत्कर्म हो ही नहीं रहे। सत्संग, प्रवचन, ध्यान, योगाभ्यास, चरित्र निर्माण शिबिर, गुरुकुल, आर्य प्रचार सभाएं धर्मोपदेशक विद्वान तथा साधु सन्त दिन रात व्यक्तियों को सन्मार्ग पर चलाने का ही तो कार्य कर रहे हैं। इनका लाभ ही होता है तथा इनकी ही जनसंख्या पर विचार करें तो दुष्कर्मा ओं की समस्त जन संख्या भी स्वामी रामदेव आदि के एक ही सत्संग में जाने वालों से कम होगी। तो क्या ये शुभ कर्मा लोग पुन: मानव जीवन पाने के अधिकारी नहीं है? अतिरिक्त पर्याप्त जनसंख्या ऐसे व्यक्तियों की भी है जो न तो किसी दुष्कर्म में लिप्त हैं तथा न ही सत्संग आदि में अधिक समय देते हैं। वे इमानदारी से अपने व्यापार या नौकरी आदि में वे अपना अधिक समय लगाते हैं। इस वर्ग से कार्य करते हुए जाने अनजाने में कुछ अपराध भी होते होगे, किन्तु इनका जीवन अपराधिक नहीं है। तो ऐसे व्यक्तियों को भी पुन: मानव जीवन मिलने में क्या बाधा है? तीसरे, जो व्यक्ति दुष्कर्मो में ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं तथा उनमें ही मर रहे हैं, कौन कह सकता है कि वे पुन: मानव जीवन को प्राप्त कर रहे हैं। इस व्यवस्था को तो परमेश्वर के सिवाय अन्य कोई जान नहीं सकता। यदि मानव इसे जानते तो वह भी सर्वज्ञ हो जाए तथा अपने अपराधों के फलों की रोकधाम में सक्षम हो जाए। जैसे आजकल कहते हैं कि एक हत्या कर लो या सैकडों हत्याएं कर लो, हत्यारे को आजन्म कारावास या फांसी ही मिलेगी, इससे बढ़कर कुछ नहीं। यदि सभी दुष्कर्मों के फलों की परमेश्वरीय व्यवस्था को मानव जानते तो वह निर्भीक अति दुर्दान्त बन जायेगा।

खुल्लर हिटलर, स्टालिन, वोटपोल के नरसंहारों की चर्चा करते हुए पूछते हैं कि इन्हें यह अनियंत्रित शक्ति क्यों और किससे प्राप्त हुई? किसी से नहीं। प्रत्येक व्यक्ति में अपरिमित शक्ति है, बस आवश्यकता है उचित साधन तथा वातावरण की। साधन तथा वातावरण पाकर व्यक्ति उसी शक्ति को जनकल्याणार्थ भी लगा सकता है तथा जन विनाशार्थ भी। कभी कभी दोनों कार्य एक ही साथ हो रहे होते हैं। भगवान राम ने यही शक्ति अर्जित कर के जहां एक ओर राक्षसों का संहार किया वहीं दूसरी ओर उनके विशाल जन संख्या पर उपकार भी किया। भगवान कृष्ण ने भी यही किया। महाभारत में 18 अक्षौणि सेना काम आयी। बहुत बडी संख्या है यहां प्रत्येक युद्ध में लोग मारे ही जाते है किन्तु युद्ध अनिवार्य है। श्रीमती इन्दीरा गांधी ने यह शक्ति प्राप्त कर के ही बांगला देश को आज़ाद किया था। वहाँ भी लोग मरे थे। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति में ऐसी शक्ति निहित है, बस साधनों तथा वातावरण के बिना वह अभिव्यक्त नहीं होती तथा यह व्यक्ति पर निर्भर करना है कि वह शक्ति का उपयोग जनकल्याणार्थ करता है या जनविनाशार्थ। महर्षि दयानन्द में क्या कम आध्यात्मिक, योगिक तथा शारीरिक शक्ति थी जिसका उपयोग उन्होंने जनकल्याण के लिए किया। ऐसे कार्य चाहे विनाश के हों या विकास के हों इनका परमेश्वर से कुछ लेना-देना नहीं है। व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र है। परमेश्वर उसके

www.thearyasamaj.org

मनमें प्रेरणा तो कर सकता है, उसे हाथ पकड कर रोक नहीं सकता। ऐसे नरसंहारों में तथा उत्तराखण्ड तथा सुनामी जैसी आपदाओं में जो प्राणी मारे जाते हैं वे सभी अपने कर्मों के आधार पर उन उन कियत्रियों के ग्रहण नहीं बनते, अपितु अन्यों के द्वारा दिये गये कर्मों से भी व्यक्ति सुख दु:ख को प्राप्त करता है। इसि भांति प्राकृतिक आपदाओं से भी।

एक प्रश्न खुल्लर जी ने यह उठाया है कि आज जो नयी नयी बीमारियां उन्पन्न हो रही है क्या परमेश्वर द्वारा लोगों को दण्ड देने लिए नये नये अस्त्र शस्त्र के रूप में प्रयोग में लायी जा रही हैं? बिल्कुल नहीं। परमेश्वर यहां कुछ भी नहीं कर रहा। सब कुछ मानव कर रहा है। महती कुछ बीमारियां लुप्त या कम हो गयी, आज दूषित वातावरण तथा खान पान के कारण नयी नयी बीमारियां जन्म ले रही है। खाने के प्रत्येक पदार्थ में मिलावट है, यहा तक कि विष तुल्य पदार्थ भी मिलाये जाते हैं।

अन्त में खुल्लर जी अपना निष्कर्ष लिखते हैं ''मेरी समझ में कर्म का सिद्धान्त और पाप पुण्य की अवधारणा मनुष्य की मूल दुर्दमनीय प्रकृतियों काम, क्रोध मोह, मद, मत्सर पर नियंत्रण लगाने का मनीषियों द्वारा विचार हुआ आयोजन है।'' ऐसा बिलकुल नहीं है। क्या हमारे ऋषि मुनि-मनीषी ऐसे झूठे तथा ढग कि इस प्रकार बहका गये? वे ज्ञानी थे, पुण्यात्मा थे, जगदुपकारक थे। उन्होंने ऐसे अकारण तर्कों के आधार पर ईश्वर, कर्मफल, पुनर्जन्म आदि का प्रतिपादन किया है कि वे शाश्वत है। यदि व्यवस्था न हो तो कुछ को तो बिना शुभ कर्म किये ही सभी प्रकार के लौकिक सुख ऐश्वर्य मिल गये तथा दूसरे को पेट भर भोजन नहीं मिल रहा। ऐसा क्यों? क्या संसार में अव्यवस्था है? यदि ऐसा हो प्रत्येक कार्य ही अव्यवस्थित हो जाये। किंतु संसार में प्रत्येक ईश्वरीय कार्य सुव्यवस्थित है। यथा मनुष्य मात्र का जन्म एक ही प्रकार से होता है। प्राणी मात्र की मृत्यु सुनिश्चित है। कोई भी नहीं बचेगा। सूर्य चन्द्र नियम से उदित हो रहे हैं ऋतु समय पर आती है। इत्यादी व्यवस्था सर्वत्र है। इसका व्यवस्थापक भी कोई होगा। वही परमेश्वर है तथा वही सभी को उनके पुण्य पापों का फल भी यथावत देता है। ऋषियों का यह आध्यात्मिक अन्येषण वर्तमान वैज्ञानिक अन्वेषणों से कई गुना आगे है।

❀❀❀

महर्षि दयानन्द सरस्वती जीवन चरित से एक प्रेरक प्रसंग

एक विद्वान् से साक्षात्कार- स्वामीजी के जगने की प्रतीक्षा में पण्डित मोतीराम नीचे घाट के फर्श पर बैठ गये। थोड़ी-सी देर में स्वामीजी वहीं चले आये और पण्डित मोतीराम से बातचीत करनी आरम्भ की।

दया० - आपका वर्ण क्या है और कहाँ से आये हैं ?

मोती० - मेरा वर्ण ब्राह्मण है और मिर्जापुर से आया हूँ।

स्वामीजी ने एक मनुष्य से चटाई मँगवाई और पण्डित मोतीराम से उस पर बैठने को कहा।

मोती० - आप चटाई पर बैठिए।

दया० - मेरा आसन तो सर्वत्र है।

मोती० - जब आप फर्श पर बैठते हैं तो मैं भी वहीं बैठूँगा। चटाई की क्या आवश्यकता है?

दया० - लौकिकी गाथानुसार आपको चटाई पर बैठने का अधिकार है।

मोती० - लौकिकी गाथा सत्य नहीं है।

दया० - सब काम छोड़कर एकान्त में परम-कृत्य सन्ध्या करनी चाहिए, सूर्योदय का समय आ गया, है, सन्ध्या से निवृत्त होकर फिर आ जाइए।

स्वामीजी के कथानुसार पण्डित मोतीराम सन्ध्या करने चले गये और स्वामीजी भी प्रात:कृत्य करने के लिए गङ्गा-तट चले गये। निवृत्त होकर स्वामीजी उसी स्थान पर लौट आये। थोड़ी देर पश्चात् पण्डित मोतीराम भी वहाँ पहुँच गये। उस समय महाराज के पास सेठ रामरतन लड्ढा रईस, मिर्जापुर और दो आचारी बैठे थे। स्वामीजी आचारियों से कह रहे थे-

मस्तकश्रृंगार नहीं, आत्मश्रृंगार करो- मस्तकश्रृंगार करने की अपेक्षा ईश्वरोपासना द्वारा आत्मश्रृंगार किया करो। ऐसा तिलक लगाने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है? आडब्बर रचना महात्माओं का काम नहीं है, यह तुमने कैसी माया रची है। आचारी चुप रहे। शोक, महाशोक ! **तिलक आदि चिह्न बनाने में लोगों की रुचि है, योगाभ्यास में नहीं। मूर्खो ! तुम यह तिलक लगाते रहे, इतने समय में तो गायत्री क्यों न जप ली, व्यर्थ समय नष्ट किया।**

एक आचारी- यदि आप हमारे देश में होते तो पृथिवी में गाड़कर मार डालते। इसपर स्वामीजी हँसने लगे और आचारी उठकर चले गये।

धर्मालाप-

दया० - धर्म क्या है और उसका स्वरूप क्या है?

मोती० - आपके कहने में दोष है।

दया० - क्या दोष है?

मोती० - धर्म का रूप नहीं है तो स्वरूप पूछना अनुचित है। इसपर स्वामीजी ने मनुस्मृति और महाभारत से धर्म का स्वरूप वर्णन किया।

मोती० - जो वेदप्रतिपादित है, वही धर्म है।

दया० - वेद में पूर्तिपूजा है वा नहीं?

मोती० - है।

दया० - कहाँ है ?

www.thearyasamaj.org

श्रावण २०७० (अगस्त २०१३) Post Date : 25-8-2013 MH/MR/N/136/MBI/-13-15 MAHRIL 06007/31/12/2015-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटींग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५/२२९३१५१८

प्रति

टिकट

मोती0- प्रतिमा की प्रतिष्ठा और देवताओं का आवाहन वेदमन्त्र से होता है, क्या वह प्रमाण नहीं है?

दया0- प्रतिष्ठा और आवाहन के मन्त्र पढ़ो।

पं. मोतीराम ने वे मन्त्र पढ़े। स्वामीजी ने उनके अर्थ करके पूछा कि इनमें प्रतिष्ठा और आवाहन के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं। इसी प्रकार मूर्ति का पूजन करने, उस पर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि चढ़ाने तथा नवग्रह-पूजन आदि के मन्त्र पढ़ें, परन्तु स्वामीजी के अर्थ करने पर उनमें भी उपर्युक्त विषय का कोई सम्बन्ध न निकला।

दयानन्द से सायंकाल तक पं. मोतीराम की बातचीत होती रही, परन्तु पण्डितजी किसी प्रकार भी मूर्तिपूजा के पक्ष में वेद का कोई मन्त्र न दिखा सके।

मोती0- तो फिर महात्मा और विद्वान् लोग मूर्तिपूजा कैसे करते आये हैं?

दया0- इतिहास में महाभारत और वाल्मीकीय रामायण, मनुस्मृति तथा सूत्रग्रन्थों को देखिए, वेदों का भाष्य देखिए, फिर आपको प्रकट हो जाएगा कि मूर्तिपूजा निरी गप्प है।

दोनों गुरुभाई शास्त्रार्थ से पराङ्मुख- इसी मेले पर हाथरस के प्रसिद्ध विद्वान् पं. हरजसराय भी आये थे और स्वामीजी विशुद्धानन्द भी वहीं थे। ये दोनों गुरुभाई थे। पं. हरजसराय अपने विद्यार्थियों से कहा करते थे कि दयानन्द अलग बैठकर मूर्तिपूजा का खण्डन करता है, यदि हमारे सामने आएगा तो उसकी वाक् भी न निकलेगी। विद्यार्थियों ने यही बात आकर स्वामीजी से कह दी। स्वामीजी ने बड़ी प्रसन्नता से उनसे कहा कि ऐसी सिद्धि तो हमें अवश्य देखनी है, जो वाक् भी न निकले, पण्डितजी से हमारी अवश्य भेंट करा दो और स्वामी विशुद्धानन्द भी उनके साथ रहें। पं. हरजसराय और स्वामी विशुद्धानन्द को स्वामीजी से भेंट करने के लिए बहुत-कुछ कहा गया, परन्तु वे न आये। इसपर स्वामीजी ने यहाँ तक कहलाकर भेजा कि यदि वे नहीं आते तो हम ही उनके पास चले आएँगे, परन्तु फिर भी स्वामीजी से वार्त्तालाप करने पर उद्यत न हुए।

काशी-शास्त्रार्थ के कारण महाराज का नाम चतुर्दिक् में प्रतिध्वनित हो रहा था। मेले में जो कोई धर्मजिज्ञासु वा प्रतिष्ठित पुरुष आता था वह यथाशक्ति उनकी सेवा में उपस्थित होकर उनका उपदेश सुनकर और उनके दर्शन करके अपने को कृतकृत्य समझता था।

महर्षि देवेन्द्रबाबू ठाकूर0- महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि ब्राह्मसमाज के प्रधान नेता भी मेले में पधारे थे और महाराज का परिचय पाने पर उनसे मिलने आये थे। महाराज उस समय जबकि महर्षि देवेन्द्रबाबू ठाकुर आये, लेटे हुए थे, उनके आने की सूचना पाकर उठकर बैठ गये। दोनों महानुभावों में बहुत देर तक प्रेमालाप होता रहा। महाराज ने उनसे वैदिक पाठशाला स्थापन का प्रस्ताव किया। ठाकुर महाशय ने उत्साहदानपूर्वक कहा कि आप कलकत्ता पधारें। उस समय इस विषय में परामर्श होगा।

महाराज के पूर्व परिचित मित्र काशी निवासी पं. ज्योतिःस्वरूप उदासी भी तीस-चालीस मनुष्यों के साथ श्रीमहाराज से मिलने आये थे और परस्पर के प्रेम-सम्भाषण से सन्तोष लाभ करके चले गये थे।

स्वामीजी ने प्रयाग में अपने भक्तों से अपने जीवन की कुछ घटनाएँ भी कही थीं, परन्तु अनुसन्धान करने पर किसी ऐसी घटना का पता न लगा जिसका उल्लेख स्वलिखित आत्मचरित में न हो।

ईसाई होने से बच गये- प्रयाग में उन दिनों कुछ लोग ईसाई मत स्वीकार करने पर उद्यत थे। उन्हें महाराज के पास लाया गया। महाराज के संसर्ग और उपदेश से उनके सब संशय मिट गये और वे अपने पैतृक धर्म में पूर्ववत् स्थित रहे।

कुछ दुष्ट प्रवृत्ति के मुसलमानों ने महाराज के प्राण-हरण की चेष्टा की थी। उनसे महाराज की रक्षा एक बंगाली सज्जन माधवनचन्द्र चक्रवर्ती ने की थी।

दयानन्द के सत्संग का प्रभाव- महाराज के सत्संग और उपदेश का लोगों पर असाधारण प्रभाव पड़ता था। न जाने कितने मूर्तिपूजक उनके सत्संग से ईश्वर-पूजक बन गये, कितने नास्तिक आस्तिक हो गये, कितने दुराचारी सदाचारी हो गये। उनमें मनुष्यों के चित्त को आकर्षित करने की अद्भुत शक्ति थी, इसका एक देदीप्यमान उदाहरण हम नीचे देते हैं।

❀❀❀